नेचर-ह्यूमन सेन्ट्रिक व्यूपाइंट

अंक : 4
अगस्त, 2016
(पुनःप्रकाशन अंक 170-171)

संस्थापक सम्पादक : **दिवंगत आर. पी. सराफ**

मानव समाज में परिवर्तन और विकास को समझने का एक प्रयास

I. इस अध्ययन का मूल विषय, आवश्यकता, उद्देश्य और दृष्टिकोण ... 1

II. सामाजिक परिवर्तन और विकास पर विभिन्न दृष्टिकोण ... 2
(क) मानव-केन्द्रित धारणाएँ (ख) तकनीकी-केन्द्रित धारणाएँ (ग) पर्यावरण-केन्द्रित धारणाएँ (घ) प्रकृति-केन्द्रित धारणाएँ (ड़) ईश्वर-केन्द्रित धारणाएँ

III. वैज्ञानिक वास्तविकतावाद : परिवर्तन और विकास पर हमारी धारणा ... 4

IV. प्रकृति में परिवर्तन और विकास पर वैज्ञानिक वास्तविकतावाद का परिप्रेक्ष्य ... 5

V. मानव समाज में परिवर्तन और विकास पर वैज्ञानिक वास्तविकतावाद का परिप्रेक्ष्य ... 5

VI. परिवर्तन और विकास पर प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान 6
(क) क्वाण्टम मैकेनिक्स (ख) भौतिकी (ग) रसायन विज्ञान (घ) जीव-विज्ञान (ड़) यांत्रिकी (च) अंतरिक्ष (छ) भू-विज्ञान

मूल्य : अनमोल

सहयोग राशि : इच्छानुसार

छपाई लागत : 20 रुपये

Scanned with CamScanner

(ज) जीवाश्म-विज्ञान (झ) विज्ञान की कुछ नई शाखाएं (ञ) विज्ञान के तीन पुराने सिद्धान्त (ट) सामाजिक विज्ञान

VII. मानव प्रजाति का क्रमिक विकास—प्रकृति की आम प्रक्रिया का एक भाग ... 10

(क) प्रकृति—एक स्व:-उत्पन्न प्रक्रिया (ख) ब्रह्माण्ड (ग) सौरमण्डल (घ) पृथ्वी (ड़) जैव-जीवन (च) पक्षी, पशु और मनुष्य (छ) मानव विकास के बारे में परिदृश्य

VIII. मानव समाज का आधार ... 14

IX. प्रकृति एवं मानव समाज के बीच तथा मानव समाज के अन्दर अन्तरक्रिया ... 14

(क) प्रकृति का मानव समाज पर अन्तरक्रियात्मक प्रभाव (ख) प्रकृति पर मानव-जाति का अन्तरक्रियात्मक प्रभाव (ग) मानव समाज के अन्दर अन्तरक्रिया (i) मानवीय सामाजिक इकाइयाँ (ii) सामाजिक मानदण्डों और रूपों (iii) सामाजिक विचार—मानव अन्तरक्रिया का मुख्य साधन (iv) मानवीय सामाजिक इकाइयों की संचालन पद्धति—एकता और संघर्ष (v) मानवीय सामाजिक इकाइयाँ और व्यवस्थागत परिवर्तन (vi) मानवीय सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाएँ (vii) मानवीय सामाजिक विकास के सकारात्मक और नकारात्मक पहलू (viii) सामाजिक पूंजी की धारणा (ix) प्रभुत्व के सामाजिक संबंध लम्बे समय तक क्यों चले (x) मनुष्य की जैविक-सामाजिक प्रकृति (xi) गुण एवं मात्रा के बीच समीकरण (xii) मानव समाज में पुराने से नये में तब्दीली (xiii) एकता व संघर्ष दोनों परिवर्तन लाते हैं (xiv) वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और मानव समाज के बीच सामंजस्य और गैर-सामंजस्य (xv) कारण और प्रभाव के बीच अन्तरक्रिया (xvi) अवश्यम्भाविता का नियम

X. सार संक्षेप ... 31

फुटनोट ... 33

Scanned with CamScanner

मानव समाज में
परिवर्तन और विकास को समझने का एक प्रयास

I इस अध्ययन का मूल विषय, आवश्यकता, उद्देश्य और दृष्टिकोण

मानव समाज में परिवर्तन और विकास कैसे होता है–इस अध्ययन की मुख्य विषय-वस्तु यही बनती है।

इस अध्ययन को हाथ में लेने की आवश्यकता विश्व में प्रचलित सामाजिक विरोधाभास की स्थिति से उभरी है, जिसमें विद्यमान धारणाएँ सामाजिक परिवर्तन और विकास को एक स्तम्भीय आधार वाले नजरिये को पेश करती है जबकि सामाजिक परिवर्तन और विकास का वास्तविक घटनाक्रम वास्तव में दो कारकों द्वारा संचालित प्रक्रिया है।

इस अध्ययन का एकमात्र उद्देश्य तथ्यों के आधार पर सामाजिक वास्तविकता को समझना है। हालांकि यह अध्ययन तथ्यों की खोज करते समय अपने आपको प्रत्येक पूर्वाग्रह से स्वतंत्र रहने की कोशिश करता है। जबकि तथ्यों की व्याख्या करने में यह विभिन्न विकल्प वाली प्रस्थापनाओं और धारणाओं से तुलना और भेद करके वास्तविकता को समझने की कोशिश करता है।

यह अध्ययन वास्तविकता की खोज में मनोगत (यानि दिमाग के यंत्र को) और वस्तुगत (यानि ऊर्जा, पदार्थ, अन्तरिक्ष, समय, इत्यादि औजारों को) दोनों श्रेणियों का उपयोग करता है। इसकी तुलना में प्रकृति विज्ञान अपना आधार केवल वस्तुगत को बनाता है और रहस्यवाद मनोगत पर आधारित अपनी आधारशीला खड़ी करता है।

यह अध्ययन अपने को ऐसे सिद्धान्त के रूप में पेश नहीं करता जो किसी चीज के प्रामाणिक और आधिकारिक लेखा-जोखा पेश करने का दावा करता हो। इसकी बजाय यह केवल अपने को मॉडल के रूप में समझता है जिसको आम आदमी और इसके अध्ययनकर्त्ता के हाथों आगे जाँचा और समृद्ध किया जाए।

यह अध्ययन अपेक्षा करता है कि विभिन्न सामाजिक विचार-शाखाएं इस पर एक वैज्ञानिक-तर्कसंगत भाव से विचार करेंगी जिसमें मतान्धता को रद्द करने, चीजों को प्रमाण के आधार पर जाँचने और जब नए तथ्यों और ताजा

Scanned with CamScanner

अनुभवों के साथ पुराने घिसे-पिटे विचारों का संघर्ष हो जाए तो पुनः विचार करने के लिए हमेशा तैयार रहने का भाव हो।

II सामाजिक परिवर्तन और विकास पर विभिन्न दृष्टिकोण

सम्पूर्ण मानव इतिहास में सामाजिक परिवर्तन और विकास का सवाल निरन्तर वाद-विवाद का मसला बना रहा है। स्वाभाविकतया समय के दौरान इस सवाल पर कई प्रकार की मानवीय अवधारणाएँ* उभरी हैं। इनको मोटे तौर पर निम्नलिखित क्रम में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(क) मानव-केन्द्रित धारणाएँ

हमारे ग्रह पृथ्वी पर और यहाँ तक कि कई मामलों में ब्रह्माण्ड में मनुष्य जाति को सर्वोत्तम घटनाक्रम समझने वाली धारणाएँ मानव समाज और इसमें होने वाली प्रत्येक क्रिया का एकमात्र निर्माता लोगों (मानवजाति) को पेश करती है। वे कई श्रेणियों में बंटी हुई है। कुछ निश्चयवादी, कुछ अनिश्चियवादी, कुछ लघुकरणवादी (अपचयनवादी), कुछ प्रेरकवादी, इत्यादि। कुछ अनुभववाद, कुछ मनोगतवाद, कुछ शून्यवाद, कुछ आतंकवाद, कुछ व्यवहारवाद, कुछ नैतिकवाद, कुछ सैनिकवाद, इत्यादि पर जोर देते है। कुछ (यानि, जो रूढ़िवादी हैं) आर्थिकता को, कुछ धर्म, कुछ संस्कृति, कुछ जाति, कुछ नस्ल, कुछ राजनीति, इत्यादि को सामाजिक विकास का प्रधान निर्णयकारी वाहक मानते है। कुछ संरचनावाद, कुछ बाहुल्यवाद, कुछ कुलीनतंत्रवाद, कुछ संकीर्णतावाद आदि पर जोर देते है।

लेकिन संक्षेप में ये सभी सिद्धान्त दशातें है कि समाज में विचार प्रमुख भूमिका निभाते है–इस प्रकार यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि विचारक ही इतिहास का निर्माण करते है। इस वैचारिक किस्म के मुताबिक विचार महान व्यक्तियों के दिमाग की उपज होते है जो जन्म से ही प्रतिभावान होते हैं। और वे समाज को आगे ले जाने के लिए इंजन की भूमिका अदा करते है। अन्य वैचारिक किस्म प्रतिपादित करती है कि जनता ही समाज के हर पहलू की निर्माता है और वही विचारों की जन्मदाता है तथा वही इतिहास चक्र को आगे ले जाने वाली है। तीसरी किस्म का यह सोच है कि विचारों की रचना भी अन्य रचनाओं की तरह ही आध्यात्मिक ताकत द्वारा की गई है।

स्पष्टतया मानव केन्द्रित सिद्धान्त एक तरफ मानव और प्रकृति के बीच की ऐतिहासिक एकता और दूसरी तरफ व्यक्ति और समाज के बीच की ऐतिहासिक एकता को तोड़ते हैं।

Scanned with CamScanner

(ख) तकनीकी-केन्द्रित धारणाएँ

आगे आइए तकनीकी-केन्द्रित धारणाओं पर जो मानवीय सामाजिक विकास को अकेले तकनीकी विकास (यानि प्रकृति से हासिल किए गए यांत्रिक साधनों) का फल समझतें है। केवल तकनीकी पर जोर देकर यह विचार इस सच्चाई पर पर्दा डालता है कि मनुष्य तकनीकी को पैदा करने वाला और संचालक है—इस तरह से तकनीकी और मानव जाति के बीच ऐतिहासिक एकता को तोड़ता है।

(ग) पर्यावरण-केन्द्रित धारणाएँ

पुन: पर्यावरण या भूगोल केन्द्रित धारणाएँ जोर देती हैं कि मानवीय सामाजिक विकास का अन्तिम कारण पर्यावरण है। कोई संदेह नहीं है कि सामाजिक विकास पर मनुष्य की तरह ही पर्यावरण भारी प्रभाव छोड़ता है। परन्तु यह सब वह केवल मनुष्य के साथ-साथ ही कर पाता है। अगर मनुष्य पर्यावरण उपयोग की तकनीकी को नहीं समझ पाता है तो पर्यावरण अपने आप क्रिया नहीं कर पाता है। उदाहरण के लिए, ब्राजील भौगोलिक सम्पदा में बहुत अधिक धनवान है। परन्तु यह अभी विकासशील देश ही है। इसके उलट जापान प्राकृतिक संसाधनों में कमजोर है परन्तु फिर भी यह अत्यधिक विकसित देशों में से एक है। स्पष्टतया पर्यावरण केन्द्रित धारणाएँ लोगों और पर्यावरण के बीच ऐतिहासिक एकता को तोड़ते है, अत: यह एक तरफा धारणाएँ है।

(घ) प्रकृति-केन्द्रित धारणाएँ

आगे मानवीय सामाजिक विकास के बारे में प्रकृति केन्द्रित धारणाएँ सामाजिक बदलाव के लिए प्रकृति को एकमात्र पहलू के रूप में स्वीकार करती हैं, और मानव जाति की भूमिका को गौण स्थान पर धकेल देती हैं। इस प्रकार मानव जाति और प्रकृति के बीच ऐतिहासिक एकता को तोड़कर ये सिद्धान्त ठीक वास्तविकता को विकृत कर देतें हैं।

(ड़) ईश्वर-केन्द्रित धारणाएँ

और आगे, उपरोक्त धारणाएँ मानवीय समाज और इसमें होने वाली प्रत्येक क्रिया को ईश्वरीय आदेश या भाग्य निर्णय के रूप में पेश करती है। इसके प्रचारक राम कहानी कहते है कि प्रत्येक वस्तु ईश्वर से पैदा होती है और लोग कभी भी अपने आप किसी समस्या का हल नहीं कर सकते। इनके मुताबिक "मनुष्य की योजना कुछ होती है परन्तु ईश्वर कुछ और कर देता है" यह उनका

Scanned with CamScanner

"निर्विवाद सत्य" है, जो मानव समाज के परिवर्तन और विकास में मानव जाति की तरह ही प्रकृति की भूमिका को पूर्णतया रद्द करता है।

III वैज्ञानिक वास्तविकतावाद : परिवर्तन और विकास पर हमारी धारणा

वैज्ञानिक वास्तविकतावाद की धारणा, प्रथमत:, चीजों का अवलोकन और परीक्षण उसी रूप में करती है जिस रूप में वे वास्तव में है या भूतकाल में रही है (जैसा कि शब्द 'वास्तविकतावाद' सूचित करता है) और प्राकृतिक विज्ञान द्वारा प्रदान किए गए प्राकृतिक तथ्यों का तथा मानवीय ऐतिहासिक व सामाजिक अनुभव द्वारा हासिल सामाजिक तथ्यों का उपयोग करते हुए चीजों का अध्ययन और व्याख्या करती है।

द्वितीयत: इसकी मान्यता है कि ब्रह्माण्ड में सभी तरह के प्राकृतिक घटनाक्रम (व्यक्ति की इकाई सहित) अन्तर सम्बन्धित है और अन्तरक्रिया करते है तथा परिवर्ती रूपों में अस्तित्व, गति और परिवर्तन के समान सामान्य उसूलों का अनुसरण करते हैं।

तृतीयत: इसकी मान्यता है कि ब्रह्माण्ड में प्रत्येक चीज (यानि सभी घटनाक्रम और उनसे संबंधित नियम) किसी निश्चित समय और स्थान में प्रासंगिक होती है और जो अपने आप में क्रमिक परिवर्तनों और इसकी दूसरे घटनाक्रमों से अन्तरक्रिया के बाद के दूसरे समय और स्थान पर गैर प्रांसगिक बन जाती है–इस प्रकार प्रत्येक चीज (ब्रह्माण्ड और कोई भी 'सिद्धान्त या प्रत्येक चीज का नियम' सहित) की सापेक्ष प्रकृति की आम वास्तविकता प्रतिबिम्बित होती है।

चतुर्थ, इसका मानना है कि प्रतिक्षण बदल रही वास्तविकता के माहौल में इसके अनगिनत घटनाक्रम और उनसे संबंधित नियमों में नये परिवर्तनों के अनुरूप अपने आपको आधुनिक बनाने और निरन्तर विकास (या तैयार) करने की क्रिया चलती रहती है।

पंचम, यह सभी निरपेक्षतावादी, निश्चयवादी और रूढ़िवादी सिद्धान्तों को रद्द करती है, चाहे इन्हें विभिन्न प्राकृतिक या सामाजिक विज्ञान की शाखाओं द्वारा पेश किया गया है। इतिहास या कुछ अन्य शिक्षण (यानि, सभी प्राकृतिक घटनाओं के बीच मानव जाति को उच्चतम जीव के तौर पर पेश करने वाले सामाजिक सिद्धान्त) जिन्होंने अपने-अपने समय के दौरान और प्रभाव क्षेत्र में जो कुछ सकारात्मक योगदान दिया, उसका उपयोग किया जाए।

Scanned with CamScanner

IV प्रकृति में परिवर्तन और विकास पर वैज्ञानिक वास्तविकतावाद का परिप्रेक्ष्य

वैज्ञानिक वास्तविकतावाद प्रकृति को एक ऐसी व्यापक या आम प्रक्रिया के रूप में देखता है जिसमें अनगिनत विशिष्ट प्रक्रियाएँ शामिल हैं। इन अनन्त प्रक्रियाओं (मानव प्रजाति की प्रक्रिया सहित) के भिन्न-भिन्न रूप और व्यवहार है। परन्तु यह सब प्रकियाएँ अपने-अपने स्वभाव के मुताबिक भिन्न-भिन्न तरीकों से एक आम (सामान्य) संचालन की पद्धति का अनुसरण करती है। यह सतत आम संचालन पद्धति की प्रक्रिया दो तरफा अन्तरक्रिया (यानि आन्तरिक और ब्राह्य) दो या दो से अधिक वस्तुओं के बीच कभी एकता और कभी संघर्ष की गति द्वारा उत्पन्न होती है। ऐसी अन्तरक्रिया, चाहे वह सामंजस्पूर्ण हो या टकरावपूर्ण, समय के दौरान प्रत्येक प्रक्रिया के गुण और परिमाण में निरन्तर आंशिक परिवर्तन कर देती है और परिणाम स्वरूप एक चरम बिन्दु पर प्रत्येक पुरानी प्रक्रिया (जिसका अपना विशिष्ट चरित्र होता है) एक नई प्रक्रिया (अपने खास लक्षणों के साथ) में तब्दील हो जाती है, इस प्रकार दोनों प्रक्रियाएँ अपने-अपने भिन्न स्वभावों वाली होती हैं। बदलाव और विकास की यह अन्तहीन प्रक्रिया मानव समाज सहित प्रत्येक घटनाक्रम में निरन्तर जारी रहती है।

V मानव समाज में परिवर्तन और विकास पर वैज्ञानिक वास्तविकतावाद का परिप्रेक्ष्य

वैज्ञानिक वास्तविकतावाद मानव समाज को एक ऐसा घटनाक्रम समझता है जिसके अस्तित्व की प्रणाली जैविक (जिसके लिए एक निश्चित प्राकृतिक पर्यावरण की आवश्यकता) है, परन्तु जिसकी जीवन यापन और कार्य करने की प्रणाली सामाजिक है। स्पष्टतया, मानव प्रजाति या उसके संगठन, यानि समाज, दो तरफा प्रकृति लिए हुए है– जैविक (या प्राकृतिक) और सामाजिक।

प्रकृति की दूसरी सभी प्रक्रियाओं की तरह मानव समाज की प्रक्रिया भी प्रकृति की सार्वत्रिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है। प्रकृति की किसी भी प्रक्रिया की तरह ही यह भी बदलती और विकसित होती रहती है। अत: यह अपने उद्भव से ही घटनाक्रमों की दो तरफा अन्तरक्रिया (एक बाह्य और दूसरी अन्त:)– एकता और संघर्ष के द्वारा और सार्वत्रिक संचालन पद्धति के अनुसार परिवर्तित और विकसित होती रहती है। बाह्य अन्तरक्रिया मानवजाति और प्रकृति की दूसरी प्रक्रियाओं के बीच एकता और संघर्ष द्वारा घटित होती है जबकि मानव समाज के अन्दर अन्त: प्रक्रिया सम्पन्न होती है।

Scanned with CamScanner

VI परिवर्तन और विकास पर प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान

प्रकृति और मानव समाज में परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया को वैज्ञानिक वास्तविकतावाद की तरह ही समस्त प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान साबित करते हैं। यह प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों की विभिन्न शाखाओं के सिद्धान्त और व्यवहार का अध्ययन करके देखा जा सकता है।

(क) क्वाण्टम मैकेनिक्स

क्वाण्टम मैकेनिक्स का विज्ञान (सूक्ष्म-विश्व के बारे में) दर्शाता है कि रेडियो सक्रिय केन्द्रक (मध्यम भार वाले तत्त्व जैसे यूरेनियम-235 या प्लुटोनियम-239) में से न्यूट्रॉन और प्रोटोन के बीच की एकता को तोड़ने से कैसे परमाणु ऊर्जा निकलती है। यह प्रक्रिया परमाणु विखण्डन कहलाती है और इसे परमाणु रिएक्टर या परमाणु बम में देखा जा सकता है। इसके उलट, जब हाइड्रोजन (एक हल्के भार वाला तत्त्व जिसमें केवल एक परमाणु होता है) के दो परमाणुओं को जोड़कर हीलियम (जिसके दो परमाणु होते हैं) बनाया जाता है तो काफी बड़ी मात्रा में परमाणु ऊर्जा निकलती है। यह प्रक्रिया परमाणु संलयन कहलाती है। जो सूर्य सहित तारों में ऊर्जा उत्पन्न होने की आम पद्धति है।

(ख) भौतिकी

भौतिक विज्ञान (दीर्घ-विश्व के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि कैसे एक निश्चित हालात में पानी के अणुओं के बीच की एकता उसे बर्फ में बदल देती है, जबकि इसके अणुओं के बीच दूरी बढ़ने से यह भाप में परिवर्तित हो जाता है। इसके परमाणुओं की वायु में औसत दूरी साधारण ठोस पदार्थ के परमाणुओं की दूरी की तुलना में 10 गुनी अधिक होती है। हमारा ग्रह पृथ्वी स्वयं गैसों, पत्थर व लोहे के कणों और धूल का संयोग है जो गुरुत्वाकर्षण खिंचाव, गैस दबाव और विद्युत-चुम्बकीय बल के द्वारा आपस में जुड़े हुए हैं।

(ग) रसायन विज्ञान

रसायन विज्ञान (रसायनिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि कैसे-कैसे तत्वों को एक निश्चित मात्रा में संयोग करवाने में एक नया यौगिक (उदाहरणतया सोडियम+क्लोराइड=साधारण नमक) बनता है। एक यौगिक को किसी निश्चित मात्रा (उदाहरणतया, पानी=ऑक्सीजन का एक परमाणु+हाइड्रोजन के 2 परमाणु) के 2 तत्त्वों में विभाजित किया जा सकता है। गैसों के संयोजन से वायु बनती है और वायु को गैसों में विभाजित किया जा सकता है।

Scanned with CamScanner

(घ) जीव-विज्ञान

जीव-विज्ञान (जैविक क्रियाओं के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि कैसे कार्बनिक (जैविक) प्रक्रियाओं (यानि पौधों, पशुओं और मनुष्यों) में पचा लेने और अपघटित भाग को निकाल देने की उपापचयी क्रियाएँ आंशिक और मूलभूत परिवर्तन कर देती है।

(ङ) यान्त्रिकी

यांत्रिक विज्ञान (यांत्रिक प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि विभिन्न यांत्रिक घटनाक्रमों में क्रिया और प्रतिक्रिया के कारण उनकी अपनी-अपनी गति में कैसे बदलाव आता है। उदाहरण के लिए एक निश्चित हालात में गेंद को दीवार से टकराने की क्रिया में दीवार समान बल से गेंद के प्रतिक्रिया स्वरूप वापस धकेल देती है।

(च) अन्तरिक्ष

अन्तरिक्ष विज्ञान (खगोलिय पिण्डों के सम्बन्ध में) दर्शाता है कि कैसे इसकी समस्याओं—जैसे समय की माप, दैनिक गति, ग्रहीय गति, ग्रहों और तारों का सहयोजन, ग्रहण और भूकेन्द्रीय पैरेलैक्स इत्यादि—को गणित के धन और ऋण अंकों का उपयोग करके हल किया जा सकता है।

(छ) भू-विज्ञान

भू-विज्ञान (भूवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में) दर्शाता है कि कैसे पृथ्वी के विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं (यानि पुरातन, आदिजीवी, मध्यजीवी, नूतन जीव युग इत्यादि) से गजुरती है, जिनमें से कोई भी अपनी पहली अवस्था को दोहराती नहीं है और प्रत्येक अवस्था में बहुत से महाद्वीपों, द्वीपों, समुद्रों, पहाड़ों इत्यादि का लोप हुआ है और पूर्णतया नए भूतत्त्वीय घटनाक्रमों के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण जलवायु परिवर्तन हुए।

(ज) जीवाश्म-विज्ञान

जीवाश्म-विज्ञान (जीवाशेष प्रजातियों का अध्ययन करने वाले विज्ञान की एक नई शाखा) दर्शाता है कि कैसे बहुत से पौधे और पशु प्रजातियाँ एक-दूसरे का स्थान लेती रही हैं। इनमें से कुछ लुप्त होती रही हैं जबकि दूसरी प्रजातियों का करोड़ों वर्षों में आविर्भाव होता रहा है। इस प्रक्रिया द्वारा पशु प्रजातियाँ क्रमशः धीरे-धीरे तृतीय महाकल्प (6.9 करोड़ से 10 लाख साल पहले) तक अधिक जटिल बनती गई, विकसित पशु सहित स्तनधारी प्रकट हुए

Scanned with CamScanner

जो न केवल संवेदन करने में सक्षम थे बल्कि प्रत्यक्ष बोध और अवधारणा की क्षमता भी रखते थे।

(झ) विज्ञान की कुछ नई शाखाएँ

विज्ञान की दूसरी नई शाखाएँ जैसे कि जैव-भौतिकी, जैव-रसायन, जैव-तकनीकी, खगोल-भौतिकी, भू-रसायन, सूक्ष्म-जैविकी, इत्यादि जो अपने से सम्बन्धित प्रक्रियाओं का संयुक्त अध्ययन करती है और दर्शाती है कि किस प्रकार उनके विशिष्ट घटनाक्रम अन्तर-सम्बन्धित, आपस में जुड़े हुए व अन्तरक्रियाशील और एक-दूसरे में तब्दील होते हैं।

(ञ) विज्ञान के तीन पुराने सिद्धान्त

विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के तीन दूसरे महत्वपूर्ण सिद्धान्त भी दर्शाते है कि कैसे प्रकृति में भिन्न-भिन्न प्रकार के घटनाक्रम अन्तरसम्बन्धित, अन्तरक्रियाशील और आपस में तब्दील होते रहते हैं।

प्रथमत: जैविक (ऑरगेनिक) घटनाक्रम की कोशिकीय संरचना (1838-39) का जीव विज्ञान का सिद्धान्त स्थापित करता है कि पशु और पौधे की कोशिकाएँ–चाहे वे एक समुद्री घास या एक पेड़ की अथवा एक सूक्ष्म जीव या मनुष्य की कोशिकाएँ हों, सभी मौलिक तौर पर एक ही तरह की संरचना और शारीरिक क्रिया सम्पन्न करती हैं। जीवों का जन्म और विकास कोशिकाओं की गुणन वृद्धि, उनके निरन्तर नवीनीकरण–जन्म और मृत्यु के–द्वारा होता है। यह सिद्धान्त सभी जीवों की ऐतिहासिक एकता को सिद्ध करता है और अप्रत्यक्ष तौर पर उनकी उत्पत्ति की एकता की तरफ इशारा करता है।

द्वितीयत: संरक्षण एवं ऊर्जा के रूपान्तरण का भौतिक सिद्धान्त (1840 का) उद्घाटित करता है कि यांत्रिक, उष्मीय, विद्युत और रासायनिक ऊर्जा आपस में परिवर्तनीय है। इस प्रकार इसने दुनिया में विभिन्न घटनाक्रमों के बीच आपसी तब्दीली और अन्तरसम्बन्ध को प्रदर्शित किया।

तृतीयत: जीवों के बारे में डार्विन का विकासवादी सिद्धान्त (1859) पशुओं और पौधों की प्रजातियों की परिवर्तनीयता और उनकी उत्पत्ति की एकता को सिद्ध करता है। यह स्वत: (स्वाभाविक) प्राकृतिक चयन, पेड़ और पौधों का अस्तित्व के लिए संघर्ष और सर्वोत्तम अनुकूल व्यक्तिगत इकाइयों और प्रजातियों के जिन्दा रहने के उसूल को मानता है। यह सभी जीवों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है और प्रदर्शित करता है कि उनका विकास पुराने को दोहराना नहीं था

Scanned with CamScanner

बल्कि पुराने का नए में तब्दील होना था। यहाँ, यह उल्लेख करना बिल्कुल उचित होगा कि प्रकृति की प्रक्रिया एक से दूसरी प्रजातियों में विकास के बहुत से उदाहरणों के दृष्टान्त पेश करती है। सूण्डी से तितली का विकास एक सामान्य तब्दीली का उदाहरण है। आजकल, एक तरह के पौधे से पौधे के उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) और जैव-तकनीकी द्वारा गुणात्मक तौर पर भिन्न पौधे में परिवर्तन करना आम प्रचलन हो गया है। यहाँ तक कि पौधे में पशु जीव के प्रतिरोपन ने पौधे और पशु के बीच के अवरोध को तोड़ दिया है।

(ट) सामाजिक विज्ञान

सामाजिक विज्ञान का गहन अध्ययन भी दर्शाता है कि कैसे समाज भी (प्रकृति की आम प्रक्रिया के एक भाग के तौर पर) अन्य प्रकृति विज्ञानों के समान समाज की विभिन्न उप-प्रक्रियाओं (यानि, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैदेशिक, प्रशासनिक इत्यादि) और उनकी अपनी-अपनी शाखाओं (उदाहरणतया सामाजिक प्रक्रिया में राष्ट्रों, राजनीतिक प्रक्रिया में पार्टी और दबाव समूह, आर्थिक प्रक्रिया में उद्योग, कृषि, इत्यादि और सांस्कृतिक प्रक्रिया में कला, साहित्य, विज्ञान, इत्यादि) में अन्तरक्रिया (यानि क्रिया और प्रतिक्रिया)का अनुसरण करता है।

समाजशास्त्र का समाज विज्ञान दर्शाता है कि कैसे अपने-अपने समय की विभिन्न ऐतिहासिक इकाइयो के बीच कभी एकता और कभी संघर्ष (उदाहरणतया प्राचीन समय में गण-संघर्ष और गणों का मेल, उसके बाद कबीलों के बीच संघर्ष और मेल, बाद में सामन्ती राज्यों के बीच युद्धों और समझौतों का होना और हालिया राष्ट्रीय युद्धों का होना, जैसे इराक के खिलाफ अमेरिका की अगुवाई में संयुक्त राष्ट्र का 1991 का युद्ध, 1950 से 1980 के बीच अमेरिका और सोवियत संघ के बीच शीत युद्ध 1980 के दशक में ईरान-इराक युद्ध, 1965 और 1971 का भारत-पाक युद्ध, इत्यादि और हालिया राष्ट्रीय गठजोड़ों जैसे नाटो, भूतपूर्व वार्सा गठजोड़ और दूसरे गठजोड़ के साथ व्यापारिक ब्लॉकों जैसे नाफ्टा, एसीयान, ई.सी. इत्यादि) के द्वारा सामाजिक विकास की प्रक्रिया आगे बढ़ रही है। राजनीतिक विज्ञान दर्शाता है कि कैसे विभिन्न राजनीतिक पार्टियां के बीच कभी संघर्ष (उदाहरणतया, पंजाब में फरवरी 1997 के चुनावों में सी.पी.आई.-कांग्रेस गठजोड़ बनाम जनता दल-सी.पी.एम. का साझा जबकि केन्द्र में सी.पी.आई, सी.पी.एम. और जनता दल का गठजोड़, हरियाणा में एच.वी.पी.-बी.जे.पी. का गठजोड़, बंगाल में वाम मोर्चा, इत्यादि) की अन्तरक्रिया से

Scanned with CamScanner

राजनीतिक प्रक्रिया विकसित होती रहती है। अर्थशास्त्र का समाज विज्ञान दर्शाता है कि कैसे आर्थिक प्रक्रिया प्राय: एकता की गति (यानि उत्पादन की प्रतिदिन की गतिविधि में) तथा कभी-कभी संघर्ष (यानि मजदूरी बढ़ाने, बोनस, प्रोवीडेण्ट फण्ड इत्यादि) के तरीके से विकसित होती है। कला और संस्कृति का समाज विज्ञान दर्शाता है कि कैसे विभिन्न सांस्कृतिक पहचानों के बीच कभी एकता (यानि अन्दर आने वाले कबीलों का जैसे कुशाणों, गुजरों इत्यादि और धार्मिक समूह जैसे मुसलमानों, क्रिश्चिनों इत्यादि का भारत के मूल निवासियों के साथ सांस्कृतिक संश्लेषण और कभी संघर्ष (उदाहरणतया ग्रीक, मुगल और ब्रिटिश का अपने-अपने शासनों के द्वारा भारत पर सांस्कृतिक प्रभाव और भारत की संस्कृति का उन पर प्रभाव) की अन्तर क्रिया से कला और संस्कृति की प्रक्रिया आगे बढ़ी है।

VII मानव प्रजाति का क्रमिक विकास–प्रकृति की आम प्रक्रिया का एक भाग

प्राकृतिक विज्ञान और मानवीय ऐतिहासिक अनुभव हमें बताता है कि प्राकृतिक और मानवीय वास्तविकताओं की यह वर्तमान अवस्था सदा से इसी रूप में अस्तित्वमान नहीं थी, परन्तु यह क्रमिक विकास की बहुत लम्बे समय तक चलने वाली प्रक्रिया का परिणाम है जो अरबों वर्षों तक चलती रही है। यह निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट हो जाती है।

(क) प्रकृति–एक स्व:-उत्पन्न प्रक्रिया

क्या प्रकृति की प्रक्रिया एक अप्रत्याशित घटना है या सार्वत्रिक नियमों का भाग और उपज है? प्राकृतिक विज्ञान और मानवीय ऐतिहासिक अनुभव के मुताबिक यह स्व-उत्पन्न हुई है, यानि इसने अपने आपको पैदा किया है। इस सिद्धान्त के संबंध में प्रमाण अकार्बनिक (प्राथमिक कण से बहुत बड़े अन्तरिक्ष पिंडों तक) और कार्बनिक घटनाक्रम (छोटे से छोटे बैक्टीरिया से मानव तक) के दोनों प्रकार के तथ्यों से मिलते हैं, कि ये दोनों ब्रह्माण्ड में समान तत्त्वों से बने हैं। यहाँ इन दोनों के बीच कोई अलंघ्य सीमा नहीं है। दोनों ही हाइड्रोजन, कार्बन, ऑक्सीजन और नाइट्रोजन के रासायनिक तत्त्वों से बने हैं। दोनों ही पर्यावरण के साथ अन्तरक्रिया करने की समान तात्विक विशिष्टता लिए हुए हैं– इसमें अन्तर केवल इतना है कि जहाँ कार्बनिक पदार्थ अति संवेदनशीन तरीके (संवेदना, उत्प्रेरित होना, उत्तेजनशीलता, इत्यादि) से व्यवहार करता है वहाँ अकार्बनिक पदार्थ इस व्यवहार को अपने ही विशिष्ट तरीके से (यहाँ तक कि लोहा चुम्बक के साथ सक्रिय होता है) करता है।

Scanned with CamScanner

(ख) ब्रह्माण्ड

ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में विज्ञान के प्रमाणों के अनुसार इसकी आयु लगभग 15 अरब वर्ष है और लगभग इतना ही समय यह और आगे कायम रहेगा। वैज्ञानिक विश्वास करते हैं कि आज हम जो कुछ भी देख रहे हैं वह ब्रह्माण्ड की पदार्थ-ऊर्जा का केवल 5 प्रतिशत हिस्सा है। अन्य 30 प्रतिशत भाग काले पदार्थ (जो विकिरित नहीं होता है, लेकिन आकाशगंगाओं और आकाशगंगाओं के समूह जैसे अंतरिक्षीय गुच्छों को अपने में समेटे हुए हैं) से गठित है। बची हुई 65 प्रतिशत गुप्त काली ऊर्जा के बारे में सोचा गया है कि उसमें गूढ़ प्रतिकर्षी गुण है जो आकाशगंगाओं को लगातार बढ़ती हुई गति से एक दूसरे से दूर धकेल रही है।

(ग) सौर-मण्डल

सौर-मण्डल के सम्बन्ध में खगोल विज्ञान के प्रमाणों के अनुसार सूर्य लगभग 10 अरब वर्ष पुराना है लगभग इतना ही समय यह और आगे कायम रहेगा। यह एक औसत दर्जे का तारा है। इसके अपने ग्रह हैं जो सौरमण्डल का निर्माण करते हैं।

विज्ञान सिद्ध करता है कि सौरमण्डल जैसा आज है वैसा हमेशा नहीं था। ना ही सूर्य अपरिवर्तनीय रहा है। भारी मात्रा में ऊर्जा के विकिरण की वजह से 4 लाख टन प्रति सैकण्ड की दर से सूर्य की संहति (द्रव्यमान) में कमी हो रही है।

(घ) पृथ्वी

पृथ्वी के सम्बन्ध में वैज्ञानिक आंकड़ों के अनुसार इसकी आयु लगभग 5 अरब वर्ष है। पृथ्वी सहित समुद्रों, चट्टानों, पहाड़ों, भूमि और वनस्पति तथा पशु जीवन का निर्माण 5 भू-वैज्ञानिक अवस्थाओं से गुजरा है:- (1) पुरातत्त्व महाकल्प 350 करोड़ वर्ष, (2) आद्य महाकल्प-170.6 करोड़ वर्ष, (3) द्वितीय महाकल्प-55.9 करोड़ वर्ष, (4) तृतीय महाकल्प- 10.9 करोड़ वर्ष, (5) चतुर्थ महाकल्प- 10 लाख वर्ष। प्रत्येक नई अवस्था शुरू होने का अर्थ है कई महाद्वीपों, टापुओं, समुद्रों, पहाड़ों इत्यादि का गायब हो जाना और सम्पूर्णतया नए भू-गर्भीय घटनाक्रमों के उभरने के साथ-साथ भरपूर जलवायु परिवर्तन हो जाना। तृतीय महाकल्प के अन्त में जाकर आज की पृथ्वी का संघटन हुआ है। पृथ्वी की वर्तमान संरचना ने लगभग 20,000 साल पहले शक्ल अख्तियार की है जो अभी भी लगातार बदल रही है।

Scanned with CamScanner

पृथ्वी एक ऐसी पतली फिल्म (पर्त) से ढकी हुई है जिसका वजन मुश्किल से हमारे ग्रह के पदार्थ के अरबवें भाग से अधिक होगा। यह वह आवरण (संभतया पृथ्वी से 1000 मील ऊपर तक) है जो हमारे भू-मण्डल पर जीवन की रक्षा करता है और उसको कायम रखता है। बिना इसके संरक्षात्मक अवरोध के रात्रि को ठण्ड असहनीय स्थिति तक पहुँच जाती जबकि दिन में गर्मी असहनीय हो जाती। हवा नाइट्रोजन (78 प्रतिशत), ऑक्सीजन (21 प्रतिशत), आर्गन (लगभग 1 प्रतिशत) और अति अल्प मात्रा में अन्य गैसों से संघटित हुई है। हवा एक समान संहति वाली नहीं है, बल्कि उसे पर्तों में विभाजित किया जा सकता है जिसमें प्रत्येक के अपने लक्षण हैं।

(ड़) जैव-जीवन

जैव-जीवन के सम्बन्ध में स्थिति यह रही है कि इसका आदिम रूप-वनस्पति-सबसे पहले शायद समुद्रों में 2 अरब वर्ष पहले प्रगट हुई। वनस्पति जीवन विकास की एक लम्बी प्रक्रिया से गुजरा है। जीवन की प्रक्रिया सरल से जटिल, पूर्व कोशिकीय से कोशिकीय, एक कोशिक से बहुकोशिक, अकशेरूकी से कशेरूकी, जलधारी से थलधारी, अण्डे देने वाले से बच्चा जन्म देने वाले और निष्क्रिय प्रतिक्रिया से असहज (प्रतिबन्धित) और सहज क्रिया (भोजन, काम-भावना इत्यादि) में विकसित होकर ही पशु जीवन का आविर्भाव हुआ है।

(च) पक्षी, पशु और मनुष्य

प्रथम पक्षी और पशु लगभग 20 करोड़ वर्ष पहले अस्तित्व में आए। लगभग 20 से 30 लाख वर्ष पहले मनुष्य का आविर्भाव हुआ। कृषि की आयु 10,000 वर्ष से अधिक नहीं हैं। और पहला लिखित शब्द लगभग इसके भी आधे समय पहले आया है।

(छ) मानव विकास के बारे में परिदृश्य

मनुष्य के विकास के सम्बन्ध में सबसे अधिक स्वीकृत परिदृश्य आजकल इस तरह है; पहला नर वानर (प्राईमेट) जो मानवता के रास्ते पर सवार हुआ वह लगभग 2.5 करोड़ वर्ष पहले का ड्रायोपिथीकस था। लगभग 1.2 करोड़ वर्ष पूर्व उसकी जगह प्लीओपिथीकस ने ले ली। उसकी जगह लगभग 50 लाख वर्ष पहले आस्ट्रेलोपिथीकस ने ले ली जो अभी तक अर्द्धमानव ही था और सम्भवत: औजार का उपयोग करने लगा था। लगभग 30 लाख वर्ष बाद आस्ट्रेलोपिथीकस हाथों से काम करने वाले मनुष्य के रूप में विकसित हुआ। उसके बाद 10 लाख वर्ष पहले पिथीकन थ्रोम्पुसेरेक्टस (पिंकिग और जावा मानव) अस्तित्व में

Scanned with CamScanner

आया। यह पहला खड़ा मानव जिसका दिमाग काफी बड़ा था उसे 'मानव' माना जा सकता है। वह सुदृढ़, घुमक्कड़, यद्यपि धीमा और पूरी पृथ्वी पर अपना रास्ता तय करने वाला था। इस धारा की दो शाखाएं हिडेलबर्ग और निएण्डरथाल बन गई। इनमें से निएण्डरथाल को पहला बुद्धिमान मनुष्य (होमो-सोपियन) होने का दर्जा मिला। कुछ मानव विज्ञानियों का अनुमान है वह लगभग 2 लाख वर्ष पहले पैदा हुआ और करीब 1 लाख वर्ष पहले यूरोप में पक्के तौर पर बस गया। उसके बाद पिल्टडाऊन मानव आया, इसके साथ ही आज का प्रतिनिधित्व करने वाली आस्ट्रेलियन आदिवासी जातियों की नस्लें चली। यह वर्तमान मानव समुदाय का सबसे पुराना आदिम रूप था। कुछ समय बाद इनमें से वर्तमान मानव समुदाय के पूर्वजों की कई साझी प्रजातियां निकलीं। क्रोमानॉन, ग्रीमाल्डी, चान्सीलेड, कोम्बेकेपेली या ओबीरिएसेल प्रजातियां बिल्कुल आधुनिक हैं और इनमें आपस में ज्यादा फर्क नहीं है। वे अभिनूतन युग में रहती थीं और उनके रूपान्तरित वंशजों के अलावा बाकी का अस्तित्व समाप्त हो गया। करीब 40 से 50 हजार वर्ष पहले एक बड़ी छलांग लगी और मानव अपने आधुनिक शारीरिक बनावट के साथ उभरा।

मानव प्रजातियां, जैसे-जैसे भू-मण्डल पर फैली, उनका अपने परिवेश के साथ अन्तरक्रिया के कारण नई विशिष्टताएँ पैदा हुई, इस प्रकार मानव कई प्रजातियों में विकसित हुआ। ये हैं मंगोलियन (पीला) समूह, कॉकेसोएड (सफेद) समूह, कॉकोसोएड भूरा समूह, निग्रो (काला समूह), आस्ट्रोलॉएड (आस्ट्रेलियन आदिवासी) समूह, कैपोइड (अफ्रीकन) समूह। इस पृथ्वी पर प्रत्येक प्रजाति दूसरी किसी भी प्रजाति के साथ स्वतंत्र रूप से सम्बन्ध स्थापित कर मानव को जन्म दे सकती है। मानव वर्णसंकर है और लम्बे समय से ऐसा रहा है।

पशु जगत से एक स्पष्टत: भिन्न प्रजाति के रूप में मानवजाति का अलगाव मुख्यतया उसके सीधे खड़े होने से हुआ था; जिससे उसके आगे के दो पैर हाथों में तब्दील हो गए। इससे मानव ने पत्थरों और छड़ियों को औजारों और उपकरणों के रूप में उपयोग करना शुरू किया। उसी के साथ-साथ पाशविक दिमाग मानवीय दिमाग में तब्दील होना शुरू हुआ और मानव ने बोलने की ताकत भी हासिल की। ये समस्त विकास लाखों वर्षों में हुए हैं, इसी युगान्तरकारी लम्बे काल ने ही सामाजिक मानव और इसके समाज को अस्तित्व में लाया है।

मानव समाज का इतिहास विकास की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मानव कई सामाजिक अवस्थाओं से गुजरा है। जिसमें प्रत्येक अवस्था निम्न लक्षणों

Scanned with CamScanner

से परिलक्षित होती है। (अ) एक निश्चित वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र (या सामाजिक-प्राकृतिक रचनातंत्र) और इससे सम्बन्धित सामाजिक रचनातंत्र (या सामाजिक व्यवस्था) और (ब) एक निश्चित तरह के लोग जिनका चलन उस समय के सामाजिक रचनातंत्र के अनुसार होता है, उसी के अनुरूप सामाजिक इकाईयों और गुपों (मूलत: एक गण, बाद में एक कबीला, उसके बाद में राजाओं के राज्य और अब एक राष्ट्रीय राज्य) में गठित होते हैं। उनके उस समय के निश्चित सिद्धान्त और व्यवहार होते हैं। एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था में बंधे होते हैं। ऐतिहासिक विकास पुष्टि करता है कि प्रत्येक अवस्था पुरानी से नई में तब्दील होने की एक प्रक्रिया रही है–इसी से छड़ियों और पत्थरों वाले आदिम स्तर से वर्तमान इलेक्ट्रॉनिक यन्त्रों के स्तर वाला मानव समाज अस्तित्व में आया है और विकसित हुआ है।

VIII मानव समाज का आधार

मानव जाति की सम्पूर्ण जैव-सामाजिक प्रक्रिया के क्रमिक विकास पर ध्यान देने और प्रकृति एवं सामाजिक विज्ञानों का घनिष्ट अध्ययन यह सबूत देता है कि मानव जाति हमेशा से प्रकृति की सार्वत्रिक प्रक्रिया के एक भाग के रूप में विद्यमान रही है और दोतरफा अन्तरक्रिया–प्रकृति (विविध प्राकृतिक प्रक्रियाओं में अन्तरक्रिया सहित) और मानव समाज के बीच तथा स्वयं मानव समाज की विभिन्न मानवीय सामाजिक इकाइयों (व्यक्तिगत मानवीय सामाजिक इकाई सहित) के बीच अन्तरक्रिया से गतिमान एवं परिवर्तनशील रहा है। यह (यानि कथित धारणा) दो व्यापक ताकतों–प्रकृति और मानव समाज–को मानव समाज के अस्तित्व, गति एवं परिवर्तन के लिए उल्लेखित करता है।

IX प्रकृति एवं मानव समाज के बीच तथा मानव समाज के अन्दर अन्तरक्रिया

ऊपर बताई गई दो अन्तरक्रियाएँ; (क) प्रकृति और मानव समाज के बीच (ख) मानव समाज के अन्दर–दो अन्तरसंबंधित प्रक्रियाएँ हैं। मानव समाज में परिवर्तन एवं विकास के लिए दोनों समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। इनमें से प्रत्येक अन्य को द्वितीयक स्थान पर रखते हुए सामाजिक परिवर्तन एवं विकास में बारी-बारी से प्रमुख भूमिका निभाती हैं। यही ये दो अन्तरक्रियाएँ हैं जो एक तरफ मानव समाज में परिवर्तन एवं विकास को आगे धकेलते हैं और दूसरी तरफ प्रकृति की प्रक्रिया में परिवर्तन एवं विकास पर निश्चित प्रभाव (यद्यपि यह चाहे बहुत ही मामूली पैमाने पर हो) डालने का प्रयास करते हैं।

Scanned with CamScanner

(क) प्रकृति का मानव समाज पर अन्तरक्रियात्मक प्रभाव

प्रकृति का मानव समाज पर अन्तरक्रियात्मक प्रभाव गैर मानवीय और मानवीय प्रक्रियाओं के बीच कुल अन्तरक्रियाओं (चाहे क्रियात्मक अथवा प्रतिक्रियात्मक) के प्रभाव का द्योतक है। ये अन्तरक्रिया दो व्यापक श्रेणियों की हैं- एक वो जिसकी संगठन की प्रणाली, संचालन और परिवर्तन (उदाहरणार्थ, हवा, पानी, जमीन, मशीन आदि) का ज्ञान मानव जाति को है और दूसरी वो जिसकी सांगठनिक प्रणाली, संचालन और परिवर्तन (उदाहरणार्थ, ब्लेक हॉल, आकाशगंगाएं, तारे, अन्तरिक्ष आदि) के बारे में मानव जाति को अभी तक जानकारी नहीं है या मामूली है।

प्रकृति (यानि, इसके किसी घटनाक्रम) मानव जाति से विभिन्न लाभकारी (जैसे हवा, पानी, भोजन आदि) और नुकसानदायक (यानि वायरस, भूकम्प आदि) प्रक्रियाओं के जरिए क्रिया और प्रतिक्रिया करती है। यह मानव जाति से विशिष्ट घटनाक्रम के संचालक नियमों, कार्यकारी प्रणाली और संगठनात्मक स्वरूपों को समझने की मांग करती है और उनकी (यानि मनुष्य की) सोच, कार्यप्रणाली और संगठन को विशिष्ट घटनाक्रम द्वारा हासिल की गई समझ से समायोजन करने की मांग करती है। बिना इस समायोजन के मानव जाति किसी भी प्राकृतिक घटनाक्रम को उचित तरीके से समझ नहीं सकती और उसका ठीक प्रबंध नहीं कर सकती। उदाहरण के लिए मनुष्य किसी मशीन का परिचालन उसके परिचालन नियमों को समझकर और मशीन के संगठनात्मक ढांचे के साथ अपनी सोच का समायोजन करके ही कर सकता है।

प्रकृति के साथ अपनी निरन्तर अन्तरक्रिया में मानव जाति लगातार नये वैज्ञानिक-तकनीकी ज्ञान को सिखता है और उसके अनुसार अपने सोचने के पुराने तरीके, कार्यपद्धति और संगठन को समायोजित करता है—इस प्रकार लगातार अपने वैज्ञानिक तकनीकी और सामाजिक ज्ञान दोनों को समृद्ध करता जाता है।

प्रकृति के विविध घटनक्रमों और उनके परिचालन नियमों, कार्यप्रणाली और संगठन के स्वरूपों के बारे में मनुष्य की समझ को वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र (अथवा सामाजिक-प्राकृतिक रचनातंत्र) कहा जा सकता है और समायोजित मानवीय सोच, कार्य और संगठन को सामाजिक रचनातंत्र (अथवा सामाजिक व्यवस्था) का खाका (या नक्शा) कहा जा सकता है। वैज्ञानिक-तकनीकी और उसके अनुरूप सामाजिक रचनातंत्र के क्रमिक रूपान्तरण और

Scanned with CamScanner

विकास की बहुत-सी अन्तहीन प्रक्रियाएँ हुई हैं, जिसमें प्रत्येक पुरानी प्रक्रिया की जगह नई प्रक्रिया स्थान ले लेती है।

वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र की व्यापक धारणा में सभी वैज्ञानिक-तकनीकी सिद्धान्तों और उससे जुड़े व्यवहारों और स्वरूपों को सम्मिलित किया जा सकता है। विशिष्ट वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और इसके मूलभूत लक्षणों की आम समझ से मानव जाति अपना सम्पूर्ण सामाजिक परिप्रेक्ष्य प्राप्त करता है।

सामाजिक रचनातंत्र (या सामाजिक व्यवस्था) की व्यापक धारणा सभी सामाजिक श्रेणियों—यथा (क) आर्थिकता और इसकी शाखाएँ (यानि उद्योग, कृषि, व्यापार, सेवाएं, आदि) राजनीति और इसकी शाखाएँ (यानि कानून, विधान, कार्यपालिका, प्रशासन, युद्ध, आदि) और संस्कृति (यानि कला, साहित्य, विज्ञान, आदि); (ख) उद्योग, कृषि, व्यापार, कानून, प्रशासन, कला, साहित्य, विज्ञान की उपशाखाएं और इसी तरह की अन्य विभिन्न उपशाखाएँ और (ग) सभी सामाजिक श्रेणियों की संचालक मानवीय सामाजिक इकाइयाँ और इसके प्रतिनिधि सामाजिक नियमों और स्वरूपों—का निर्माण करती है। संक्षेप में सामाजिक रचनातंत्र विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था को अभिव्यक्त करता हे।

इस प्रकार, सामाजिक रचनातंत्र (या सामाजिक व्यवस्था) मानव समाज के संगठन, गति और परिवर्तन में बहुत ही महत्वपूर्ण कारक का निर्माण करता है। यह अपने सम्बन्धित वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र की आम समझ से सामाजिक परिप्रेक्ष्य को प्राप्त करता है और इसके आवश्यक व्यवस्थागत पहलुओं (यानि राजनीति, आर्थिकता और संस्कृति) को बदलती हुई विशिष्ट वैज्ञानिक-तकनीकी प्रक्रियाओं के संचालन साधनों और संगठनात्मक स्वरूपों की सामाजिक आवश्यकता के अनुसार, विकसित करता है। मानव जाति को बदलती हुई वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र के अनुसार उसके सामाजिक रचनातंत्र को समायोजित करने के लिए बाध्य करके प्रकृति मानव समाज के संबंध में प्राथमिक तौर पर कार्य करती है।

(ख) प्रकृति पर मानव जाति का अन्तरक्रियात्मक प्रभाव

मानव समाज एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था को चलाने की प्रक्रिया के साथ-साथ प्रकृति की अभी तक अज्ञात प्रक्रियाओं के लिए प्रयोग और नई खोजों को अधिक धन सम्पदा प्राप्त करने या कुछ अतिरिक्त सामाजिक फायदे

Scanned with CamScanner

या बढ़ती हुई सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने को आगे बढ़ाने के लिए प्रकृति के साथ क्रिया व प्रतिक्रिया करता है। कभी-कभी अन्तरक्रिया एकात्मक (उदाहरणतया, श्वास लेना, जलपान, भोजन करना इत्यादि) और कभी-कभी प्रतिकूल (उदाहरणतया, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग, प्रदूषण उत्पन्न करना, इत्यादि) होती है। इन अन्तरक्रियाओं के दौरान मनुष्य निरन्तर विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं में नये बदलाव ला देता है तथा नये सिद्धान्त और व्यवहार के माध्यम से मानवता के लिए प्राकृतिक प्रक्रियाओं को अधिक उपयोगी नये रूपों में विकसित कर देता है। इस प्रकार, प्रकृति में नये बदलाव लाकर और परिणामस्वरूप वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र को और आगे विकसित करते हुए मानव-समाज, प्रकृति की तुलना में मुख्य भूमिका अदा करता है।

प्रकृति और मानव समाज की यह प्रमुख भूमिका बारी-बारी से सामाजिक विकास की प्रत्येक प्रक्रिया में निरावधि तक चलती रहती है, इस प्रकार वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और समाज दोनों में लगातार परिवर्तन लाती है और सामाजिक उन्नति को आगे बढ़ाती है।

(ग) मानव समाज के अन्दर अन्तरक्रिया

मानव समाज के अन्दर अन्तरक्रिया सामाजिक व्यवस्था से निकटता से संबंध रखती है जिसके संचालन के लिए दो अन्तरसंबंधित चीजों की जरूरत है (क) विभिन्न क्षेत्रों—राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, सुरक्षा और विदेश मामलों—में कार्यरत मानवीय सामाजिक इकाइयों की, तथा (ख) सामाजिक इकाइयों द्वारा सामाजिक मानदण्डों और स्वरूपों को विकसित करके उनके आधार पर पुरानी सामाजिक व्यवस्था का पुनर्निर्माण करना।

(i) मानवीय सामाजिक इकाइयाँ

मानवीय सामाजिक इकाइयाँ—जो वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और इससे जुड़े सामाजिक रचनातंत्र की एकमात्र संचालक और सर्जन करने वाली कारक है—कोई सरल घटनाक्रम नहीं बनती है। एक व्यक्तिगत सामाजिक इकाई से प्रारम्भ होकर राष्ट्र (उदाहरणतया, 102 करोड़ का भारतीय राष्ट्र) जैसी बड़ी इकाइयां भी इसमें शामिल हैं। इनमें से कुछ सामाजिक इकाइयां प्रमुख तौर पर वैचारिक (उदाहरणतया धार्मिक समूह, राजनीतिक ग्रुपों, वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यकर्त्ता इत्यादि) होती है। इनमें से कुछ मुख्यतया आर्थिक फायदे के लिए होती है (उदाहरणतया, परिवार, ट्रेड यूनियन, वर्ग इत्यादि)। इनमें से कुछ मुख्यतया राजनीतिक, कुछ आर्थिक, कुछ सांस्कृतिक और कुछ समाज विरोधी

Scanned with CamScanner

होती हैं। इनमें से कुछ इकाइयों (उदाहरणतया, राष्ट्रों, समुदायों इत्यादि) को उनके बहुपक्षीय चरित्र के कारण उनका मुख्य चरित्र नहीं पहचाना जा सकता।व्यक्तिगत इकाई को छोड़कर बाकी सभी इकाइयों को दो पहलुओं से पहचाना जाता है उनमें एक पहलू उसका मुख्य् कार्यकर्त्ता और दूसरा पहलू उसकी सहायक इकाई (यानि जनरल बॉडी) होती है। नियम के तौर पर ऐसी कोई मानवीय सामाजिक इकाई नहीं है जिसका अगुवा कार्यकर्त्ता (जो चाहे थोड़े ही समय के लिए अगुवा की भूमिका निभाए) न हो। किसी इकाई के अगुवा कार्यकर्त्ता और सहायक इकाई (जनरल बॉडी) के बीच सम्बन्ध यह बना रहता है कि इनमें से प्रत्येक बारी-बारी से आगे आता रहता है। विभिन्न सामाजिक इकाइयाँ अपने-अपने वैज्ञानिक-तकनीकी और सामाजिक रचनातंत्र के अनुरूप क्रमिक रूपान्तरण और विकास की अन्तहीन प्रक्रिया से गुजरती है, जिसमें प्रत्येक पुरानी इकाई की जगह नई-नई इकाई अपने सामाजिक और वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र के संबंध में विभिन्न मसलों पर आपसी एकता व संघर्ष की अन्तरकिया के दौरान जगह लेती है, इसमें पुरानी इकाइयां क्षयग्रस्त रचनातंत्र और नई इकाइयां उभर रहे रचनातंत्र का प्रतिनिधित्व कर रही होती है।

(ii) सामाजिक मानदण्डों और रूपों

सामाजिक मानदण्डों और रूपों (जिन्हें सामाजिक संबंध भी कहा जाता है)—जो सामाजिक रचनातंत्र की विभिन्न सामाजिक श्रेणियों (जैसे राजनीति, आर्थिकता, संस्कृति और विचारधारा) और उनसे संबंधित शाखाओं (उद्योग, कृषि, व्यापार कानून, प्रशासन, कला, साहित्य, विज्ञान और इसी तरह) को लागू करने की सुविधा प्रदान करने वाले नियमों—का मसला भी काफी जटिल है। संक्षेप में ये सम्बन्ध व्यक्ति और समाज के बीच आर्थिक कार्य (यानि उत्पादन, वितरण, विनिमय, उपभोग, आर्थिक समानता) के दौरान विभिन्न सामाजिक इकाइयों के दरम्यान, राजनीतिक कार्यवाहियों (यानि चुनावों, प्रशासन, कानून इत्यादि) और सांस्कृतिक गतिविधियाँ (यानि आचार-शास्त्र, विभिन्न सांस्कृतिक मुहिमों में नैतिक तत्त्व इत्यादि) तथा भौतिक वस्तुओं और विभिन्न सामाजिक इकाइयों के बीच सामाजिक उसूलों का एक समुच्चय बनते हैं जो बहुपक्षीय सामाजिक सम्बन्धों को तय करते हैं दूसरे शब्दों में वे मानवीय सामाजिक इकाई तय करते हैं। इन सामाजिक मानदण्डों और रूपों पर एक निश्चित समाज की सभी सामाजिक इकाइयां आम सहमति बनाकर उन्हें कानूनों और नियमों के रूप में संविधान और विधिशास्त्र में दर्ज कर लेती है और उसे

Scanned with CamScanner

समस्त राज्य और इसके निवासियों के लिए कानूनी तौर पर पालन करना आवश्यक बना दिया जाता है।

मानव समाज के प्रारम्भ से लेकर अब तक सामाजिक रचनातंत्र (और इससे सम्बन्धित वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र) के अनुरूप सामाजिक इकाइयों और सामाजिक मानदण्डों तथा रूपों में निरन्तर बदलाव होता रहा है।

एक निश्चित समाज में विभिन्न सामाजिक इकाइयों के मध्य सामाजिक मानदण्डों और रूपों के क्रमिक विकास और लागू करने के दौरान तीव्र वाद-विवाद और विचार-विमर्श निरन्तर उभरता रहता है और जो संवैधानिक, कानूनी, आर्थिक और सांस्कृतिक मसलों पर आम सहमति के रूप में विभिन्न सामाजिक गतिविधियों के माध्यम से बाद में हल हो जाती है।

(iii) सामाजिक विचार- मानव अन्तरक्रिया का मुख्य साधन

सामाजिक विचार का महत्व इस तथ्य से जाँचा जा सकता है कि वे मानव समाज में सही और गलत का निर्णय करने में मुख्य साधन होते हैं। सही सामाजिक विचारों को सिद्धान्त के रूप में संकल्पित कर लिया जाता है और इसका व्यवहार हमें आगे बढ़ाता है, जबकि गलत अवधारणाएँ और उनको लागू करने से हमारा सामाजिक जीवन नर्क बन जाता है। यही कारण है कि मानव समाज, इसकी मानवीय सामाजिक इकाइयाँ और मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों में सामाजिक विचार के माध्यम से क्रियाशील होते हैं। विचारों के माध्यम से सम्प्रेषण मनुष्यजाति की केवल मात्र संचालन पद्धति है जो उसको दूसरे सभी गैर मानवीय घटनाक्रम से अलग कर देती है।

मानवीय सामाजिक इकाइयाँ और उनके दूरदर्शी नेता अपने विचारों को सामाजिक सिद्धान्तों में सूत्रबद्ध करते हैं। और अपने समकालीन विचारकों (बाहर और अन्दर के) के साथ अन्तरक्रिया करते हुए विभिन्न पहलकदमियों और गतिविधियों के माध्यम से अपने विचारों को व्यवहार में लाते हैं। सही सिद्धान्त व्यवहार के माध्यम से अपनी वैधता स्थापित करते हैं जबकि गलत सिद्धान्त व्यावहारिक गतिविधि के दौरान अपनी साख खो देते हैं।

एक सही सिद्धान्त और उसके व्यवहार के बीच में संबंध है कि इनमें से प्रत्येक बारी-बारी से मानव जाति को उनके उद्देश्यों और कोशिशों में सहायता पहुँचाते हैं। शुरूआत में जब सिद्धान्त व्यवहार को विकसित करता है, तब सिद्धान्त ज्ञान का मुख्य पहलू बनता है, जिन क्षणों में व्यवहार सिद्धान्त को समृद्ध करता है उस समय व्यवहार प्राथमिक होता है। इस प्रकार, सिद्धान्त

Scanned with CamScanner

और व्यवहार दोनों ही ज्ञान का आधार बनते हैं चाहे वह ज्ञान प्राकृतिक हो या सामाजिक अथवा सैद्धान्तिक हो या व्यवहारिक।

किसी सामाजिक इकाई (एक व्यक्ति की इकाई भी हो सकती है) का कुल सिद्धान्त और व्यवहार ही उसका सम्पूर्ण प्राकृतिक और सामाजिक ज्ञान बनता है। इसी तरह से मानव समाज की सभी सामाजिक इकाईयों का कुल सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान ही समाज का सम्पूर्ण ज्ञान बनता है।

प्रकृति के ज्ञान के संबंध में, सूचना का आधार प्राकृतिक प्रक्रियाओं में निहित होता है, जबकि उनके पर्यवेक्षण, व्याख्या और सूत्रबद्ध करने की प्रक्रिया मानवीय सोच से जुड़ी हुई है। उसी तरह से सामाजिक ज्ञान के संबंध में सूचना का आधार सामाजिक रचनातंत्र (मानवीय सामाजिक इकाइयों और सामाजिक मानदण्डों और रूपों सहित) में निहित होता है जबकि उसकी व्याख्या और सूत्रबद्ध करने की प्रक्रिया मानवीय सोच से जुड़ी हुई है। ज्ञान के मनोगत सृजन में उत्कृष्ट व्यक्ति की मानवीय सामाजिक इकाई वैचारिक परिशोधन संयंत्र की भूमिका अदा करती है जबकि उससे संबंधित टीम या ग्रुप के रूप में मानवीय सामाजिक इकाई या सम्पूर्ण समुदाय वैचारिक कच्चे माल की पूर्ति करते हैं।

मानव समाज में मानव समुदाय के लिए पर्यावरणीय और सामाजिक तौर पर जो भी प्रासंगिक है, उसे सामाजिक तौर पर सही ठहराया जाता है, जबकि उसके उलट को सामाजिक तौर पर स्पष्ट रूप से गलत निर्दिष्ट किया जाता है।

(iv) मानवीय सामाजिक इकाइयों की संचालन पद्धति–एकता और संघर्ष

सामाजिक इकाइयाँ बारी-बारी से आपसी एकता और आपसी संघर्ष के द्वारा सामाजिक विकास में अपनी विशिष्ट भूमिकाएँ निभाती हैं। एकता का सवाल विभिन्न मानवीय सामाजिक इकाइयों के निश्चित उद्देश्यों और हितों में मेल से सम्बन्ध रखता है, जबकि विभिन्न मानवीय सामाजिक इकाइयों के वास्तविक उद्देश्यों और हितों में टकराव से संघर्ष की भूमिका निकलती है। बहुत से राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक मामलों में एकता और संघर्ष के मसले एक मानवीय सामाजिक इकाई के दृष्टिकोण या कुछ सामाजिक इकाइयों के आम सहमति पर आधारित एजेण्डा के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने वाले भिन्न विचारों के द्योतक हैं जो या तो सम्पूर्ण सामाजिक वास्तविकता या इसके विभिन्न आयामों में कोई एक के बारे में स्पष्ट धारणा का दावा करते हैं अथवा इन वास्तविकताओं को उचित जवाब देते हैं। ठोस हालात के मुताबिक वास्तविकता और उसको दिया गया जवाब बारी-बारी से परिस्थितियों के

Scanned with CamScanner

मुताबिक प्राथमिक स्थान ग्रहण करते हैं। यहाँ तक कि राज्य सत्ता (जिसमें एक राज्य की समस्त जनसंख्या प्रभावित होती है) का विषय जो निरन्तर टकराव का विषय बना रहता है, इस विषय को भी या तो मुकाबले वाली मानवीय सामाजिक इकाइयों के बीच समझौते से या लड़ाई से हल किया जाता रहा है। जब कभी एक नया सामाजिक रचनातंत्र और सम्बन्धित वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र उभरता है तब समाज में नई मानवीय सामाजिक इकाइयाँ पैदा होती हैं, ऐसे समय में पुरानी इकाइयों और नई पैदा हुई मानवीय सामाजिक इकाइयों के बीच एकता और संघर्ष की समस्या तेज हो जाती है।

(v) मानवीय सामाजिक इकाइयाँ और व्यवस्थागत परिवर्तन

मानव समाज की सम्पूर्ण लम्बी प्रक्रिया में कोई एक मानवीय सामाजिक इकाई (चाहे वह पश्चिमी उदारवादी मॉडल का बुद्धिमान नायक हो या कम्युनिस्ट मॉडल का सामाजिक वर्ग हो) सम्पूर्ण उद्देश्य की पूर्ति करने वाली इकाई न तो हुई है और ना ही हो सकती है यानि एक इकाई सामाजिक प्रगति का एकमात्र स्त्रोत नहीं होती है। सामाजिक विकास के द्वारा व्यवस्थागत परिवर्तन विभिन्न मानवीय सामाजिक इकाइयों (व्यक्तिगत इकाई सहित) के बीच अन्तरक्रिया के द्वारा ही होता है और इसी अन्तरक्रिया से ही ऐसा होना सम्भव है। इस बहुपक्षीय और बहुआयामी अन्तरक्रिया में कभी एक विशिष्ट वैज्ञानिक अपने सहयोगी वैज्ञानिक की टीम सहित, कभी एक विशिष्ट अर्थशास्त्री अपने सहयोगी अर्थशास्त्रियों की टीम सहित, कभी एक विशिष्ट धार्मिक प्रचारक अपने सहयोगी धार्मिक प्रचारकों के साथ और अन्य इसी प्रकार के संगठन भिन्न-भिन्न समय पर अपने-अपने समय की समकालीन मानवीय इकाइयों के साथ अपने विकसित सही सामाजिक विचारों की अन्तरक्रिया (जो कभी-कभी एकता द्वारा और कभी संघर्ष द्वारा होती है) करते हुए सामाजिक विकास में अपना बड़ा योगदान करते हैं।

सभी को सम्मिलित कर लेने वाली राज्य इकाई में अत्यधिक उत्कृष्ट राजनीतिक इकाई और उसका विशिष्ट नेता वास्तविकता पर आधारित अपने प्रस्तावों और उनको लागू करने में अपने समय की राजनीतिक इकाइयों के साथ अन्तरक्रिया (एकता व संघर्ष) के द्वारा अपनी प्रमुख भूमिका अदा करता है।

(vi) मानवीय सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

मानव जाति (यानि मानव समाज) का सामाजिक विकास एक एकल

Scanned with CamScanner

सामाजिक प्रक्रिया है, जो दो तरफा यानि एक तरफ मानव समाज और प्रकृति के बीच और दूसरी तरफ मानवीय सामाजिक इकाइयों के बीच अन्तरक्रिया से परिलक्षित होती है। इस दो तरफा अन्तरक्रिया ने मोटे तौर पर सामाजिक विकास की पाँच अवस्था पैदा की है, जिनमें से प्रत्येक एक निश्चित वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र और इसकी सामाजिक व्यवस्था विशिष्ट सामाजिक श्रम विभाजन, सामाजिक इकाइयाँ, उसके साथ ही उनके सामाजिक मानदण्डों तथा रूपों और सामाजिक सिद्धान्तों एवं व्यवहार से गठित होती है।

प्रथम अवस्था पत्थरों, छड़ियों, हड्डियों, धनुषों, तीरों इत्यादि की तकनीकी पर आधारित भोजन इकट्ठा करने और शिकार करने की अवस्था थी। उस समय सामूहिक श्रम विभाजन था, गणों का संगठन और वंश आधारित मानदण्ड, ढांचा, सिद्धान्त और व्यवहार था जो लाखों वर्षों तक चलता रहा था।

दूसरी अवस्था पशुपालनवाद की थी। यह अवस्था पहले पशुपालन तकनीकी और बाद में धातु (कांस्य और ताम्बा) के औजारों पर आधारित थी। इस अवस्था के शुरू में एक अर्द्ध सामूहिक और बाद में दास आधारित श्रम विभाजन प्रचलित था। उस समय का समाज कबीलों का संगठन था। या पशुपालक इकाइयों (यानि प्रभुत्वकारी पशुपालक इकाई, पशुपालक दास इकाई, प्रभुत्वकारी इकाई से सम्बन्धित दूसरी पशुपालक इकाइयाँ इत्यादि) और अर्द्ध वंशवाद के साथ-साथ दासता (अन्तर कालीबाई युद्धों के दौरान पकड़े गए कैदियों के द्वारा बनाए गए दास और दास प्रथा) के मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार वाला संगठन था।

तीसरी अवस्था में कृषिकारी अवस्था थी। यह अवस्था धातु (विशेषकर लोहा) पिघलाने और ढलाई करने, भूमि उर्वरण, खान खोदने, चक्की लगाने, बुनाई करने, चर्म शोधन, मिट्टी के बर्तन बनाने, कागज बनाने, छपाई करने, जहाज निर्माण इत्यादि तकनीकी पर आधारित थी। इस अवस्था में भू-दास आधारित और पारिवारिक कार्य पर आधारित श्रम विभाजन था। कृषिकारी इकाइयों (यानि प्रभुत्वकारी कृषिकारी इकाई, भू-दास की इकाई, मध्यम श्रेणी, कारीगर इकाई इत्यादि) और राज्य के देवी अधिकार की विचारधारा के नीचे भू-दास प्रथा के मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार वाला संगठन कायम था।

चौथी अवस्था औद्योगिक अवस्था थी। यह अवस्था पहले हस्तकला और बाद में मशीन कला (जो भापशक्ति, विद्युतशक्ति और उच्च ऊर्जा ईंधन से

Scanned with CamScanner

चलाई जाती थी) की तकनीकी पर आधारित थी। इस अवस्था में उजरती मजदूरी और मालों के विनिमय पर आधारित श्रम-विभाजन कायम हुआ, औद्योगिक इकाइयों (यानि प्रभुत्वकारी औद्योगिक इकाई, औद्योगिक मजदूर इकाई, औद्योगिक मध्यम श्रेणी इत्यादि) का एक संगठन बना और उपनिवेशवाद व कम्युनिस्ट केन्द्रीयवाद के साथ उदारवाद एवं संसदीयवाद का सिद्धान्त और व्यवहार तथा मानदण्डों व रूपों वाली व्यवस्था कायम हुई।

पाँचवीं अवस्था चिन्हित करती है हालिया में उभरे 1945 के बाद के वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र (अन्तरिक्ष, ऊर्जा, पदार्थ, जीव-विज्ञान, साइबरनेटिक्स इत्यादि के क्षेत्र में अत्यधिक विकसित अन्तर्दृष्टि को सम्मिलित करते हुए) और इससे सम्बन्धित ग्लोबल (या राष्ट्रों की अन्तरनिर्भता का) सामाजिक श्रम विभाजन ने ग्लोबल कम्युनिटी के निर्माण की एक नई प्रक्रिया को गति प्रदान कर दी है जो विभिन्न अवस्थाओं से गुजरती हुई आगे बढ़ेगी।

(vii) मानवीय सामाजिक विकास के सकारात्मक और नकारात्मक पहलू

मानव समाज की विभिन्न अवस्थाओं ने मनुष्य जाति के भविष्य के लिए किस तरह के रणनीतिक प्रभाव छोड़े हैं।

इनमें से प्रत्येक ने मानव सभ्यता के लिए कुछ न कुछ योगदान दिया है। सामूहिक रूप से इन्होंने दो तरफा राजनीतिक प्रभाव—सकारात्मक और नकारात्मक दोनों—पैदा किया है।

इसका सकारात्मक पक्ष है कि इन्होंने मानव समाज के कदम ब कदम आधुनिकीकरण की एक नई प्रक्रिया को अपने वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक इकाइयाँ, सामाजिक मानदण्डों और रूपों और सामाजिक सिद्धान्तों एवं व्यवहारों को रूपान्तरित करके उत्पन्न किया है। इस प्रकार भोजन इकट्ठा करने और शिकार करने के विज्ञान और तकनीकी तथा इसका सामूहित श्रम-विभाजन जो भोजन इकट्ठा करने वाले और शिकारी से पहचाना जाता है। इस समय के मनुष्य ने अपने भोजन इकट्ठा करने और शिकार के लिए सामाजिक मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार और वंश (सगोत्रता) आधारित गण के संगठन कायम किए, जिसने बाह्य दुश्मन और आन्तरिक गण के विद्रोही के प्रति बर्बर रवैया अपनाया।

पशुपालन विज्ञान और तकनीकी तथा अर्द्ध सामूहिक एवं दासता आधारित श्रम-विभाजन का एक घूमने वाले मनुष्य (यानि एक घुमक्कड़) द्वारा चरित्र-चित्रण होता है। इस मनुष्य ने अपने पशुपालनवाद के सामाजिक मानदण्डों,

Scanned with CamScanner

रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार तथा अर्द्ध-वंशवाद आधारित कबीला संगठन कायम किए। जिसने अपने विरोधियों यानि दासों और कबीले का आन्तरिक अनुशासन तोड़ने वालों के प्रति निर्मम रवैया अपनाया।

कृषिकारी विज्ञान और तकनीकी तथा इसके भू-दास आधारित श्रम-विभाजन को एक कृषक (अपनी भूमि के साथ जुड़ा हुआ) द्वारा चिह्नित किया जाता है। इस कृषक ने अपनी कृषि के सामाजिक मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार तथा धार्मिक दिशा वाले कृषिकारी समुदाय का एक सामन्ती संरक्षण आधारित संगठन कायम किया जिसने दुश्मनों और आन्तरिक कानून भंजकों के प्रति सैन्यकृत और दमनकारी रवैया अपनाया।

औद्योगिक विज्ञान और तकनीकी और इसके माल व उजरती श्रम पर आधारित श्रम-विभाजन एक औद्योगिक मनुष्य की खासियत रखता है। यह औद्योगिक मनुष्य अपने घरेलू मामले में उदारवादी सामाजिक मानदण्डों, रूपों, सिद्धान्त और व्यवहार से तथा बाहरी मामलों में उपनिवेशी दृष्टिकोण से चलता रहा है। इसी तरह से यह राष्ट्र के अन्दर संसदीय व्यवहार करता रहा है जबकि बाहर ,खासकर उपनिवेशों में दमनकारी भूमिका अदा करता रहा है।

नई ग्लोबल व्यवस्था राष्ट्रों में मित्रता, सहयोग और एकता के अपने नये लक्षणों के साथ अभी प्रकट हुई है।

नकारात्मक पक्ष पर मानव समाज (विशेष रूप से राष्ट्रीय राज्य) ने न सिर्फ मानव के लिए बल्कि सम्पूर्ण जैव-जगत के लिए तीन बहुत ही ज्यादा विध्वंसक चुनौतियों को पैदा किया है।

एक चुनौती पर्यावरण—वायु, पानी, भूमि इत्यादि के—प्रदूषण की है जिसने पहले से जैव विविधता के क्षेत्र में बरबादी खड़ी कर रखी है। जैव-जगत की सैकड़ों जातियां प्रतिदिन लुप्त होती जा रही है। खतरे की घण्टी पहले से ही बज रही है कि दुनिया पर्यावरण विनाश के कगार पर खड़ी है।

दूसरी चुनौती तेजी से बढ़ रही जनसंख्या की है जो इस शताब्दी के दौरान ही चार गुनी बढ़ी है। जनसंख्या विस्फोट ने प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर अत्यधिक दबाव बढ़ा दिया है और इससे पर्यावरण का संकट गहरा गया है।

तीसरी सबसे अधिक असमानता और अनुचित सामाजिक व्यवस्था (खासकर राष्ट्रीय राज्यों द्वारा) स्थापित की गई है। जिसके तहत मानव समुदाय अमीर और गरीब, विशेषाधिकार और वंचित, समृद्ध और कंगाल और इसी तरह से अधिक से अधिक विभाजित होता जा रहा है।

Scanned with CamScanner

(viii) सामाजिक पूँजी की धारणा

मानव समाज की विभिन्न सामाजिक अवस्थाओं के दौरान शुरू की गई और आगे लाई गई आधुनिकीकरण प्रक्रिया, दूसरे शब्दों में, सामाजिक पूंजीकरण की प्रक्रिया है। यह एक तरफ वैज्ञानिक तकनीकी (या प्राकृतिक) संसाधनों की उन्नति और दूसरी तरफ मानवीय संसाधनों के विकास को अभिव्यक्त करती है। ये दो कारक (यानि विज्ञान-तकनीकी और लोग) मानव समाज में शुरूआत से ही हरेक सामाजिक घटनाक्रम की रचना करते आए हैं। ये दोनों इकट्ठे सामाजिक पूँजी का निर्माण करते हैं।

पूँजी, इसके साहित्यिक अर्थ में उच्चतम् अथवा सर्वोत्तम वस्तु और, इसके सामाजिक अर्थ में मानव समाज के सर्वाधिक मूल्यावान घटनाक्रम की द्योतक है। मानव समाज के प्रादुर्भाव के समय (यानि, वह समय जब मनुष्य ने पत्थर और छड़ों की प्रारम्भिक तकनीकी की रचना की और बदल में इनके सामाजिक रचनातंत्र में बंधा था) से ही उपर्युक्त दो कारक चलन में रहे हैं। इस पूरी अवधि में सामाजिक पूंजी भी विद्यमान रही है।

मानव समाज की प्रक्रिया के अनुरूप सामाजिक पूंजी की प्रक्रिया भी विभिन्न स्वरूपों से गुजरी। भोजन संग्रहण एवं शिकारी समुदाय के तहत सामाजिक पूँजी में छड़ियों, पत्थरों, हड्डियों, तीर और धनुष की तकनीकी, जंगली उत्पाद, जानवरों का मांस और गण संगठन तथा इसके सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्मिलित थे। मालों की अदला-बदली ने सर्वप्रथम वस्तु-विनिमय का रूप लिया और बाद में सार्वत्रिक तुल्यांक आया जो लगता है विभिन्न रूपों में चला, उदाहरणार्थ, अनाज, फर, शंख, सीप, मछली आदि। पशुपालन समुदाय के तहत जानवर सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक निवेश का मुख्य सार्वत्रिक तुल्यांक के रूप में उभरा। कृषिकारी समुदाय के अधीन भूमि और जानवर के अलावा धातु मुद्रा का भी विनिमय के साथ-साथ निवेश के रूप में उदय हुआ, जबकि औद्योगिक समुदाय के तहत मुद्रा ने विनिमय और निवेश दोनों में प्रमुख स्थिति अख्तियार कर ली। प्रत्येक समुदाय में पूँजी पर मुख्य रूप से नियंत्रण प्रभुत्वकारी मानवीय सामाजिक इकाइयों का रहा।

स्पष्टतः पूँजी की उपर्युक्त धारणा पूँजी के बारे में चल रहे दो आम सिद्धान्तों-पश्चिमी उदार अर्थशास्त्र (जो पूँजी को उत्पादन के साधनों का जोड़ मानता है) और मार्क्सवादी अर्थशास्त्र (जो पूँजी को मजदूरों का अतिरिक्त मूल्य या संचित श्रम या उत्पादन संबंधों की मान्यता देता है) से भिन्नता रखता

Scanned with CamScanner

है। पहले वाला मानव कारक (यानि श्रम) को कम आंकता है और उसे द्वितीय स्थान देता है जबकि दूसरा वाला तकनीकी को द्वितीय स्थान देता है। वास्तव में दोनों सिद्धान्त एक तरफा हैं।

ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि विज्ञान व तकनीकी तथा मनुष्य दोनों ही अपने-अपने तरीकों से सर्जन करने वाले हैं। मनुष्य की आविष्कार करने की काबलियत उसकी मानसिक और शारीरिक ऊर्जा में निहित है, जबकि तकनीकी की उत्पादकता ऊर्जा के विभिन्न रूपों (यानि विद्युत, रासायनिक, गतिज, ऊष्मा, विकिरण, नाभिकीय, इत्यादि) में निहित है। वास्तव में उत्पादन के क्षेत्र में तकनीकी (यानि स्वचालित और मनुष्य द्वारा संचालित दोनों तरह की मशीने) मानव श्रम से अधिक मूल्य का सर्जन करती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि एक मशीन दसियों हजार वाट ऊर्जा एक दिन में उपयोग करती है जबकि उसकी तुलना में एक मजदूर प्रतिदिन शारीरिक कार्य के दौरान लगभग 120 वाट ऊर्जा (यानि लगभग 2,400 कैलोरी) खर्च करता है। यद्यपि भौतिक उत्पादन में मनुष्य तकनीकी से पीछे रह जाता है जबकि वह अपनी मानसिक अद्वितीयता (अनोखेपन) के कारण भौतिक और वैचारिक खोज (नवीनता या आविष्कार) में तकनीकी से आगे बढ़ा हुआ (उत्कृष्ट) होता है। इस प्रकार मानव समाज में विज्ञान व तकनीकी तथा मानव दोनों ही पूंजीकरण व आधुनिकीकरण के लिए दो आधारभूत पहलू बनते हैं।

(ix) प्रभुत्व के सामाजिक सम्बन्ध लम्बे समय तक क्यों चले

मानव समाज प्रभुत्व के सामाजिक सम्बन्धों के रूप में क्यों अभिलक्षित होता रहा है? इसके दो तरफा कारण है यानि लाखों सालों तक आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास का निम्न स्तर पर बने रहना एक कारण है तथा इस समय के दौरान बर्बर और असभ्य जीवन से एक तर्कसंगत और मानवीय जीवन की तरफ मनुष्य के शनैः-शनैः क्रमिक विकास के द्वारा बढ़ना दूसरा कारण है। वैज्ञानिक तकनीकी रचनातंत्र और मानवीय ज्ञान में निरन्तर विकास के कारण सामाजिक प्रभुत्व की गुंजाइस (मात्रा) शनैः-शनैः कम होती गई जिससे दास सामाजिक संबंधों से भूदास सामाजिक संबंध और उसके बाद मजदूरी वाले सामाजिक संबंध विकसित हुए। दासता के युग में प्रभुत्वकारी शासक मानवीय सामाजिक इकाई उस समय के वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र के साथ-साथ दासों को नियंत्रण में रखती थी। भूदास युग में, दासों का दर्जा उठ कर अतिरिक्त आर्थिक अधिकारों के साथ भूदास में विकसित हुआ, परन्तु

Scanned with CamScanner

वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और भूदास श्रम अभी भी प्रभुत्वकारी शासक मानवीय इकाई के नियंत्रण के नीचे रहा। हालिया उजरती श्रम (वेतनभोगी) के युग में प्रभुत्व की मात्रा और सीमित हुई है वर्तमान दौर में प्रभुत्व की सीमा और नीचे आ रही है क्योंकि आज का वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और मानव समाज की चेतना का स्तर सामाजिक प्रक्रिया में जनता (मजदूरों सहित) के नियंत्रण की आवश्यकता को उजागर कर रहा है।

(x) मनुष्य की जैविक-सामाजिक प्रकृति

प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञान दर्शाते हैं कि मनुष्य की दोहरी प्रकृति है—जैविक और सामाजिक अथवा जैव-सामाजिक। ये दोनों पहलू एक एकीकृत पूर्ण इकाई के रूप में गठित है। अत: इनमें से किसी एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। आम मानवीय प्रक्रिया (जिनमें जन्म, वृद्धि, क्षय और मृत्यु की अवस्थाएं शामिल हैं) और विशिष्ट मानवीय प्रक्रियाओं, जैसे श्वास लेना, पानी पीना, भोजन करना, मल निष्कासन इत्यादि से मानव के जैविक पहलू को देखा जा सकता है। सामाजिक अन्तरक्रिया के बिना मनुष्य की कुछ भी सीख नहीं पाने की असमर्थता से उसका सामाजिक पहलू स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए हालांकि सभी मनुष्य सुस्पष्ट बोलने वाले अंग के साथ जन्म लेते हैं फिर भी वे भाषा और बोलने का ज्ञान केवल सामाजिक गतिविधि के द्वारा ही हासिल करते हैं। एक बच्चा जो भेड़ियों के बीच रहता हो ना तो बोलना और न ही चलना सीख सकता है और सभी सामाजिक चरित्र खो बैठता है, इसी तरह से सुस्पष्ट बोलने वाले जैविक अंग के बिना गैर मानवीय जीव को किसी भी तरह से सामाजिक वार्तालाप से भाषा और बोलने की कला नहीं सिखाई जा सकती। अत: निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य की प्रकृति को अकेला सामाजिक या अकेला जैविक करार देना एक तरफापन है।

(xi) गुण और मात्रा के बीच समीकरण

विज्ञान और अनुभव दर्शाता है कि एक घटनाक्रम की मात्रा और गुण के बीच किसी तरह का समीकरण है। ऐसा इसलिए है क्योंकि गुण मात्रा में और मात्रा गुण के साथ विद्यमान होती है। उदाहरणत: भोजन की प्रत्येक गुणवत्ता एक निश्चित मात्रा में ऊर्जा लिए हुए होती है जिसे कैलोरी में मापा जाता है। कक्षों में स्थित इलेक्ट्रोनों की संख्या किसी परमाणु के रासायनिक व्यवहार को तय करती है। एक ऑक्सीजन अणु के दो परमाणु में से एक और परमाणु जोड़ देने से इसकी गुणवत्ता ओजोन के रूप में बदल जाती है। इसी तरह से मानव

Scanned with CamScanner

समाज में गुण और मात्रा का परिवर्तन साथ-साथ चलता रहता है। उदाहरणतया 18 वीं शताब्दी में भाप के इंजन का आविष्कार 19 वीं शताब्दी में मशीनों का तथा 20 वीं शताब्दी में कम्प्यूटरों का आविष्कार एवं इसी तरह के विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में मात्रा और गुण के समस्त महत्वपूर्ण परिवर्तनों ने अपने सामाजिक श्रम विभाजन के साथ-साथ सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को बदल दिया है।

(xii) मानव समाज में पुराने से नए में तब्दीली

मानव समाज में पुराने से नये में तब्दीली की धारणा कभी समाप्त नहीं होने वाले एवं निरन्तर चलने वाले अल्पकालीन और दीर्घकालीन दोनों तरह के परिवर्तन को जाहिर करती है। अल्पकालीन परिवर्तन वो परिवर्तन है जो किसी एक जैसी प्रक्रिया में शुरू से लेकर आगे के सभी दौरों में होता रहता है, उदाहरणतया, मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया–शिशु से बच्चे, बच्चे से किशोर, उसके बाद नौजवान, प्रौढ़, बुढ़ापा और आखिर में मृत्यु–में होने वाले परिवर्तन अथवा औद्योगिक रचनातंत्र के विकास की प्रक्रिया में निर्माणी प्रणाली से स्वचालित मशीनों में परिर्वतन होना। पुरानी प्रक्रियाओं की नई प्रक्रियाओं में तब्दीली को दीर्घकालीन परिवर्तन कहते हैं। उदाहरणतया, मानव जीवन की प्रक्रिया का मानव की मृत्यु के पश्चात विभिन्न गैर-जैविक घटनाक्रम (यानि, धूल, गैसों, इत्यादि) की प्रक्रिया में तब्दील हो जाना या कृषिकारी सामाजिक ढांचे की प्रक्रिया में निरन्तर मात्रात्मक परिवर्तन से गुजर कर औद्योगिक सामाजिक ढांचे की प्रक्रिया में तब्दील हो जाना अथवा पृथ्वी के विकास की विभिन्न अवस्थाएं जिनमें से प्रत्येक अवस्था का अर्थ है कि एक बड़ी संख्या में महाद्वीपों, द्वीपों, समुद्रों, पहाड़ों इत्यादि का गायब हो जाना और पूर्णतया नए भूगर्भीय घटनाक्रम के साथ-साथ अत्यधिक जलवायु परिवर्तन हो जाना।

(xiii) एकता व संघर्ष दोनों परिवर्तन लाते हैं

विज्ञान और इतिहास दर्शाता है कि एकता और संघर्ष दोनों भिन्न तरीकाकार हैं जिनके परिणाम एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत निकलते हैं, एक प्रक्रिया में पहले मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन होते हैं और तब एक नई प्रक्रिया में तब्दील हो जाती है। उदाहरण के लिए, समकालीन सामाजिक रचनातंत्र के साथ उस समय की सामाजिक इकाइयों का सामंजस्य (या एकता) सामाजिक विकास को गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तौर पर आगे बढ़ाता है जबकि समकालीन सामाजिक रचनातंत्र के साथ उस समय की सामाजिक

Scanned with CamScanner

इकाइयों का गैर-सामंजस्य (या संघर्ष) सामाजिक विकास को गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों तौर पर छिन्न-भिन्न कर देता है। पुन: चूंकि कृषिकारी से औद्योगिक समाज में तब्दीली फ्रांस में (1789) में पुरानी और नई सामाजिक इकाईयों के बीच संघर्ष द्वारा हुई जब कि जर्मनी (1848) और जापान (1880) में यह तब्दीली पुरानी और नई सामाजिक इकाइयों के बीच मेल-मिलाप से हुआ। आगे, पुरानी और नई सामाजिक इकाइयों के बीच संघर्ष पुरानी सामाजिक संरचना को तोड़ देता है जबकि नई सामाजिक इकाइयों की एकता से नई सामाजिक संरचना का निर्माण होता है। स्पष्टतया, ऐसे दोनों सिद्धान्त जिनमें एक केवल संघर्ष पर जोर देता है और दूसरा केवल एकता के तरीके पर जोर देता है–एक तरफा हैं।

(xiv) वैज्ञानिक-तकनीकी रचनातंत्र और मानव समाज के बीच सामंजस्य और गैर सामंजस्य

उनका सामंजस्य उनकी अनुरूपता (यानि किसी निश्चित सामाजिक रचनातंत्र को मानवीय सामाजिक इकाइयों द्वारा उचित तौर पर लागू करना) में निहित होता है जब कि उनका गैर-सामंजस्य उनकी गैर-अनुरूपता (यानि किसी निश्चित सामाजिक रचनातंत्र के लिए जरूरी सामाजिक मानदण्डों और ढंगों का मानवीय सामाजिक इकाइयों द्वारा अवहेलना करना) में निहित होता है। उनके बीच सामंजस्य सामाजिक विकास को आगे बढ़ाता है, जब कि गैर-सामंजस्य सामाजिक अवनति का कारण बनता है।

(xv) कारण और प्रभाव के बीच अन्तरक्रिया

क्या किसी प्रक्रिया में एक पक्ष हमेशा प्रभावी तथा दूसरा पक्ष हमेशा ताबेदार बना रहता है, उदाहरण के लिए किसी घटना के कारण और प्रभाव के बीच की अन्तरक्रिया में क्या एक पक्ष ही प्रमुख बना रहता है। विज्ञान और इतिहास का अनुभव दर्शाता है कि अन्तरक्रिया में प्रत्येक पक्ष दूसरे पक्ष को प्रभावित करता है। ऐसा ही किसी भी घटनाक्रम के कारण और प्रभाव के बीच अन्तरक्रिया में भी होता है यद्यपि कारण वह घटनाक्रम है जो दूसरे घटनाक्रम को अस्तित्व में लाता है और प्रभाव किसी कारण की क्रिया का प्रभाव है तब भी कारण से पैदा होने के बाद स्वयं कारण को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए किसी माल की बढ़ती मांग उत्पादन को प्रोत्साहित करती है जो बदले में पुन: मांग में वृद्धि करती हैं। आगे, जबकि उष्मा, इंजन की धुरी की यांत्रिक गति का कारण है और वही बदले में यांत्रिक गति और इंजन के भागों में घर्षण से गर्म

Scanned with CamScanner

होने के बाद उष्मा उत्पन्न करती है। यहाँ उष्मा यांत्रिक गति के लिए कारण और प्रभाव साथ-साथ है। और आगे, जबकि यांत्रिक गति (जल विद्युत स्टेशन में पानी की धारा से उत्पन्न) विद्युत धारा का कारण है और बाद में वही विद्युतधारा स्वयं विद्युत स्टेशनों और फैक्ट्रियों में यांत्रिक गति का कारण बन जाती है।

आम तौर पर मानव समाज में कारण-संबंध को सार्वत्रिक चरित्र के रूप में स्वीकार किया जाता है परन्तु फिर भी कुछ अपवाद हो सकते हैं जिनके बारे में अभी हमें जानकारी नहीं हैं।

(xvi) अवश्यंभाविता का नियम

क्या ब्रह्माण्ड में अवश्यंभाविता का नियम विद्यमान है? विज्ञान और ऐतिहासिक अनुभव दर्शाता है कि ब्रह्माण्ड में केवल परिवर्तन और विकास का नियम या प्रत्येक वस्तु का पुराने से नये में तब्दील हो जाने का नियम ही अवश्यंवभाविता का आम (सार्वत्रिक) नियम है। परन्तु किसी भी विज्ञान या दर्शनशास्त्र द्वारा अनुमान या पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता कि नया आखिरकार क्या शक्ल या ढंग अख्तियार करेगा। विज्ञान या दर्शनशास्त्र पक्के तौर पर नहीं कह सकते कि परिवर्तन और विकास का नियम सदा के लिए एक अपरिहार्य नियम है।

एक निश्चित हालात में विभिन्न घटनाक्रमों के बीच अन्तरक्रिया एक निश्चित घटनाक्रम के विकास के सम्बन्ध में विभिन्न सम्भावनाओं और प्राथमिकताओं को जन्म देती है। इनमें अनिवार्यता, प्रबल संभावना या प्राथमिकता, सम्भावना, संयोग और असंभावना शामिल है।

अनिवार्यता यह अभिव्यक्त करती है कि एक निश्चित हालात में क्या घटित होना तय है। परन्तु अगर निश्चित हालात में कोई कमी आ जाए तो ऐसा घटित नहीं भी हो सकता। उदाहरण के लिए एक पूर्ण ठीक हालात में हवाई जहाज को प्रज्वलित करने पर उसका उड़ना तय है, परन्तु अगर हवाई पट्टी ठीक नहीं है तो यह नहीं उड़ेगा, यानि यह नहीं उड़ सकेगा।

प्रबल संभावना यह अभिव्यक्त करती है कि एक निश्चित हालात में क्या घटना घटित होने की प्रबल गुंजाइश है। उदाहरण के लिए एक कैन्सरग्रस्त व्यक्ति की पहले मृत्यु होने की प्रबल संभावना होती है। संभावना यह अभिव्यक्त करती है एक निश्चित हालात में क्या घटना घटित हो सकती है। उदाहरण के लिए अगर आसमान में बादल छाए हों तो वर्षा हो सकती हैं।

Scanned with CamScanner

संयोग यह अभिव्यक्त करता है एक निश्चित हालात में घटना घटित होने की बहुत कम संभावना है। उदाहरण के लिए निश्चित ताप और नमी वाली भूमि में बीज का पौधे के रूप में उगना एक अनिवार्य घटनाक्रम है, परन्तु ओलावृष्टि से पौधे का नष्ट हो जाना एक संयोग ही होता है।

असंभव यह अभिव्यक्त करता है कि एक निश्चित हालात में किसी घटना के घटित होने का आधार नहीं है और इसलिए ऐसा होना अवास्तविक है। उदाहरणतया, आज मनुष्य के लिए 500 साल की औसत उम्र पाना असंभव है, परन्तु हो सकता है यह कुछ समय बाद संभव हो जाए।

X सार संक्षेप

यह अध्ययन 5 नये बिन्दुओं को उल्लेखित करता है जो इसे अन्य अवधारणाओं से भिन्न अभिव्यक्त करता है।

प्रथम, इसकी मान्यता है कि मानव समाज में परिवर्तन और विकास दो कारकों, यानि, प्रकृति और मानव समुदाय के कारण होता है ये दोनों सामाजिक परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया को शुरू करने और आगे ले जाने के लिए आवश्यक सभी जरूरतों को मुहैया करते हैं। सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के चालक 2–कारक के हमारे दृष्टिकोण के विपरीत चल रही समाजशास्त्रीय मान्यताएँ एक-स्तम्भ आधारित सिद्धान्तों (मानव केन्द्रित, तकनीकी केन्द्रित, पर्यावरण केन्द्रित, प्रकृति केन्द्रित, ईश्वर केन्द्रित आदि) को सामाजिक परिवर्तन एवं विकास के बुनियादी नियमों को आगे लाती हैं।

द्वितीय, यह मानता है कि सामाजिक परिवर्तन एवं विकास दो तरफा अन्तरक्रिया–यानि एक तरफ प्रकृति एवं मानव समाज के बीच तथा दूसरी तरफ समाज में मानवीय सामाजिक इकाइयों के बीच अन्तरक्रिया–से होता है। यह अन्तरक्रिया जो एक 2-तरफा गति–यानि की एक तरफ एकता की और दूसरी तरफ संघर्ष की गति को अभिव्यक्त करती है। एकता की गति का परिणाम विशिष्ट घटनाक्रम के जुड़ने में, जबकि संघर्ष की गति उसके विभाजन में परिणित होती है। दोनों गतियां एक अविभाज्य सम्पूर्णता का निर्माण करती हैं। इनमें से प्रत्येक (यानि गति) एक समय में अन्य को द्वितीयक भूमिका में रखते हुए प्रथम स्थिति अख्तियार करती है और इसी प्रकार इसके उलट। यह लगातार तब तक चलती है जब तक विशिष्ट प्रक्रिया अन्य नई प्रक्रिया (जिसके अपने विशिष्ट गुण और मात्रा होती है) में रूपान्तरित नहीं हो जाती।

Scanned with CamScanner

तृतीय, विद्यमान चल रहे दृष्टिकोण कि मानव की प्रकृति या तो जैविक है अथवा सामाजिक; के विपरीत यह जोर देता है कि मानव अथवा मानव समुदाय का चरित्र जैव-सामाजिक है। जैविक दृष्टिकोण स्व-हित को एकमात्र मानवीय प्रेरणा होने पर जोर देता है जबकि अन्य केवल सामाजिक को ही मानवीय प्रेरकता का कारण मानता है।

चतुर्थ, मानवीय विकास के सर्वोच्चता के विपरीत, यह मानता है कि मानव जाति प्रकृति के क्रमिक विकास की प्रक्रिया से पैदा हुई है, यह ब्रह्माण्ड की उच्चतम घटनाक्रम नहीं है। यहाँ तक कि हमारी पृथ्वी पर मानव जाति समाज में परिवर्तन और विकास की दो प्रेरक ताकतों में से मात्र एक (अन्य प्रकृति) ताकत है। हमारी पृथ्वी पर अन्य गैर-मानवीय घटनाक्रम के उनके अपने विकास के नियम है। मानव जाति अन्य गैर-मानवीय वस्तुओं से केवल मात्र अन्तरक्रिया करती है, किसी समय वह प्रथम और किसी अन्य समय में द्वितीय स्थिति रखती है।

पंचम, यह विश्वास करता है कि ब्रह्माण्ड में निरपेक्ष कुछ भी नहीं है। प्रत्येक लगातार परिवर्तन में है। यह केवल विशिष्ट समय और स्थान में प्रासंगिक है। कुछ निश्चित प्राकृतिक नियम हो सकते हैं जो शायद अरबों वर्षों तक प्रासंगिक है और बने रहते हैं, लेकिन हमारे विचार में, यहाँ तक कि वे भी अपनी संक्रमणशील प्रकृति में है। हरेक की संक्रमणशील प्रकृति के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, यहाँ तक कि किसी विशिष्ट समय में अलग-अलग घटनाक्रमों के संक्रमण के भिन्न-भिन्न नियम (अथवा संक्रमण का सार्वत्रिक नियम, यदि कोई हो तो) हो सकते हैं, और किसी विशिष्ट समय पर वे एक भिन्न घटनाक्रम में परिवर्तित हो जाए।

यह अध्ययन अपने वर्तमान कार्य को समाप्त करते हुए हर एक और सभी को अपील करता है कि वो इसे पढ़ते वक्त इसके सारतत्त्व पर अपनी टिप्पणी करने का कष्ट करें। यह हमें मामलों के सही और गलत में भेद करने की हमारी विचारधारा को विकसित करने में मदद देगा। यह आगे हमें इस सवाल—कि सामाजिक परिवर्तन और विकास पर प्रमुख अवधारणाओं का मानवीय समाज की रचना करने में क्या प्रभाव पड़ता है—को प्रभावी ढंग से हल करने योग्य बनाएगा, जो कि सामाजिक वास्तविकता को समझने की हमारी अगली कोशिश की मुख्य विषयवस्तु बनेगी।

20-04-2002

Scanned with CamScanner

फुटनोट :

(क) मानव केन्द्रित धारणाएं

1. निश्चयवाद- निश्चयवाद घटनाओं के एक निश्चित पद्धति से घटित होने का सिद्धान्त है जो निरपेक्ष कारण और स्थाई प्रभाव का लक्षण लिए हुए हैं और इस प्रकार यह दीर्घकालीन पूर्व-अनुमानों को ठीक ठहराने का सिद्धान्त है। (मसलन, मार्क्सवाद-लेनिनवाद का यह पूर्वानुमान करना कि पूंजीवाद का पतन अवश्यभावी है)।
2. न्यूनकरणवाद (लघुकरणवाद)- यह आम नियम से विशिष्ट नियम का अर्थ निकालने का सिद्धान्त है।
3. प्रेरणावाद- विशिष्ट घटनाओं से व्यापक नियम (या आम नियम) निकालने का सिद्धान्त-एक विशिष्ट घटना के लिए कोई चीज सत्य है तो दूसरी घटनाओं के लिए भी वही सत्य होगा-इस प्रकार से सत्य को सिद्ध करने का तरीका प्रेरणावाद है।
4. इंद्रियानुभववाद- केवल निरीक्षण और प्रयोग को मान्यता देने तथा सिद्धान्त को रद्द करने का उसूल इन्द्रियानुभवाद है।
5. मनोगतवाद- समस्त ज्ञान का स्त्रोत दिमाग है का सिद्धान्त मनोगतवाद है।
6. निषेधवाद (शून्यवाद) - वर्तमान विश्वासों को पूर्णतया रद्द करने और समस्त अस्तित्व को संदेह से देखने का सिद्धान्त।
7. आतंकवाद- आम लोगों को दबाव से भयग्रस्त कर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का सिद्धान्त।
8. व्यवहारवाद- किसी घटनाक्रम के व्यवहार का यथार्थ अध्ययन का सिद्धान्त (यानि घटनाक्रम को प्रोत्साहित या प्रेरित होने और उसके द्वारा प्रतिक्रिया करने का यथार्थ अध्ययन करने का सिद्धान्त ही व्यवहारवाद है)।
9. नैतिकतावाद- धर्म की बजाय सामाजिक तौर पर सही और गलत के भेद पर आधारित आचरण के नियमों का सिद्धान्त नैतिकतावाद है।
10. सैन्यवाद- सैन्यशक्ति पर भरोसा रखने का सिद्धान्त।
11. मार्क्सवाद- सामाजिक विकास के मुख्य पहलू पैदावारी शक्तियां और पैदावारी सम्बन्धों (यानि उत्पादन की प्रणाली या आर्थिकता) को मानने का सिद्धान्त।
12. धार्मिक कट्टरतावाद- परम्परागत रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताएं समाज को संगठित करने का एकमात्र तरीका हैं, इस दृष्टिकोण वाले सिद्धान्त को धार्मिक कट्टरतावाद कहते हैं। उदाहरणतया, हिन्दुत्व, अफगान तालीबान, इस्लामीकरण इत्यादि।
13. सांस्कृतिकतावाद- यह सिद्धान्त एक निश्चित संस्कृति को सामाजिक विकास का एकमात्र पहलू मानता है।

Scanned with CamScanner

14. मण्डलवाद- सामाजिक न्याय देने का निर्णयकारी पहलू जाति (यानि एक दो हजार वर्ष पुरानी सामाजिक इकाई) को मानने का सिद्धान्त।
15. नस्लवाद- विशिष्ट नस्ल में अन्तर्निहित श्रेष्ठता होती है, को मानने का सिद्धान्त नस्लवाद है। यह सिद्धान्त विभिन्न नस्लों के बीच टकराव पैदा करने की ओर ले जाता है।
16. संरचनावाद- ऐसा सिद्धान्त जो भागों की बजाए सम्पूर्ण पर अधिक जोर देता है।
17. बहुलवाद- एक से अधिक विकास के निर्णयकारी असूलों को मान्यता देने का सिद्धान्त बहुलतावाद है।
18. कुलीनतंत्रवाद (अल्पतंत्रवाद)- अल्प लोगों के शासन को मान्यता देने वाला सिद्धान्त।
19. संभाव्यतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो मानता है कि हालांकि कोई निश्चित पक्का ज्ञान नहीं होता परन्तु यह ज्ञान विश्वास का ऐसा आधार तो हो सकता है जो व्यवहारिक क्रिया के लिए पर्याप्त हो।
20. रूढ़िवाद- ऐसा सिद्धान्त जो परम्परावाद को जैसे का तैसे कायम रखने या नहीं बदलने का दृष्टिकोण रखता है।
21. संविधानवाद- ऐसा सिद्धान्त जो राज्य संचालन के मूलभूत उसूलों पर जोर देता है।
22. पितृसत्तावाद- पुरुष की सर्वोच्चता को मान्यता देने वाला सिद्धान्त।
23. अवसरवाद- ऐसा सिद्धान्त जो उसूलों से बंधा हुआ न हो अवसरवाद कहलाता है।
24. उपयोगितावाद (स्वार्थपरतावाद)- ऐसा सिद्धान्त जो प्रत्येक वस्तु की जांच परख उसकी उपयोगिता के नजरिये से करता है।
25. सार्वभौमवाद (विश्ववाद)- ऐसा सिद्धान्त जो विश्वास करता है कि आखिरकार सारी मानव जाति को बचाया जा सकेगा।
26. सर्वसत्तावादी- ऐसा सिद्धान्त जो अपने आपको बिल्कुल सच होने का झूठा दावा करता है तथा भिन्न विचारों को इजाजत नहीं देता है।
27. समानतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो मनुष्य जाति की बराबरी पर जोर देता है।
28. अज्ञेयवाद- ऐसा सिद्धान्त जिसके अनुसार कुछ भी ज्ञान नहीं है या न ही ज्ञान किया जा सकता है।
29. स्वार्थवाद (अहमवाद)- ऐसा सिद्धान्त जिसके अनुसार खुद का स्वार्थ ही विकास की नींव है।
30. मानववाद- ऐसा सिद्धान्त जिसके मुताबिक सोचने का कार्य कलाप या सम्बन्ध मानवीय हितों को ध्यान में रखकर तय किया जाता है।

Scanned with CamScanner

31. तर्कशीलतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो सामाजिक विकास का अंतिम कारण तर्क को मानता है।
32. द्वन्द्वात्मकतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो अन्तरविरोध को विकास का आम नियम समझता है तथा विभिन्न सामाजिक ताकतों के बीच विवाद या वर्ग संघर्ष को इतिहास का निश्चयकारी पहलू समझता है।
33. उदारतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो स्वतंत्र विचारों यानि विचारों की आजादी में विश्वास रखता है।
34. फलवाद- ऐसा सिद्धान्त जो केवल अपने हितों की व्यावहारिक उपयोगिता पर जोर देता है।
35. अनुकूलतावाद (सकारात्मक)-ऐसा सिद्धान्त जो सकारात्मक तथ्यों और निरीक्षण लायक घटनाक्रमों को मान्यता देता है तथा कारण या अन्तिम उद्भव की सभी जांच पड़तालों को रद्द करता है।
36. ऐच्छिकवाद (संकल्पवाद)- ऐसा सिद्धान्त जो यह मानता है कि मानवीय व्यवहार का निर्धारण स्वतंत्र इच्छा पर निर्भर है, इसलिए उनका पूर्वानुमान लगाना मुश्किल है।
37. नियतिवाद (प्रारब्धवाद)- ऐसा सिद्धान्त जो स्वतंत्र इच्छा को नकारता है और इस धारणा पर चलता कि सब कार्य पूर्ववर्ती (पहले की प्राथमिक) कारणों से तय होते हैं।
38. संवेदनावाद-ऐसा सिद्धान्त जो संवेदना को ज्ञान का एकमात्र स्त्रोत समझता है।
39. संशोधनवाद- ऐसा सिद्धान्त जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त या किसी भी कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर प्रभुत्वकारी लाईन के सूत्र को संशोधित करता है।
40. गणतंत्रवाद- ऐसा सिद्धान्त जो गणतंत्रीय ढांचे की सरकार की वकालात करता है।
41. नाजीवाद- नाजी पार्टी और खासकर इसके तानाशाह द्वारा प्रत्येक को नाजीवादी सैनिक ताबेदारी के नीचे लाने का सिद्धान्त को नाजीवाद कहते हैं।
42. ज्ञानसापेक्षवाद (संबंधवाद) - ऐसा सिद्धान्त जो केवल सम्बन्धों को ही ज्ञान मानता है।
43. सापेक्षतावाद- ऐसा सिद्धान्त (जिसे अलबर्ट आइन्सटाईन ने प्रस्तुत किया था) जो अन्तरिक्ष, समय, गति, त्वरण एवं गुरुत्वाकर्षण के सम्बन्धों को दर्शाता है तथा प्रदर्शित करता है कि सभी तरह की गति सापेक्ष है।
44. तत्ववाद- यह सिद्धान्त घटनाक्रमों में अन्तर्निहित सारगर्भित वास्तविकताओं को मान्यता देता है।

Scanned with CamScanner

45. अनुमानवाद (न्यायवाक्यवाद)- जिसमें अगमनात्मक (प्रेरक) से निगमनात्मक तर्क (Inductive to deductive) के दो प्रस्तावों से परिणाम निकालने के सिद्धान्त को अनुमानवाद कहते है। उदाहरणतया, कालीदास एक मनुष्य है इसलिए कालीदास नाशवान है।

46. श्रमिक संघवाद- ऐसा सिद्धान्त जो पैदावार के साधनों तथा वितरण पर नियंत्रणकारी अधिकार श्रमिक संघों को हस्तान्तरित करने का विचार रखता है।

47. आधुनिकवाद- ऐसा सिद्धान्त जो आधुनिक पश्चिमी विचारों की रोशनी में घटना की जाँच परख करता है।

48. आभासवाद (नाममात्रवाद) - ऐसा सिद्धान्त जो समझता है कि सार्वभौम (या सर्वव्यापक) तथा अमूर्त (या निरपेक्ष) केवल नाम ही है तथा इनके अनुरूप कोई वास्तविकता नहीं है।

49. प्राच्यवाद (पूर्वदेशीयतावाद)- ऐसा सिद्धान्त जिनमें प्राच्य विद्या (यानि पूर्व की सभ्यता) वाली सभ्यता पर जोर दिया जाता है।

50. पाश्चात्यावाद- ऐसा सिद्धान्त जो पश्चिमी सभ्यता पर जोर देता है।

51. तत्वविज्ञान- ऐसा सिद्धान जो चीजों के सार तत्त्व से सम्बन्ध रखता है।

52. प्लेटोवाद- ऐसा सिद्धान्त जो प्लेटो की दार्शनीक प्रणाली को मानता है। जिसकी केन्द्रीय अवधारणा है कि दुनिया के अस्तित्व में अकेले विचार ही वास्तविक और सर्वोपरि है।

53. समतावाद- ऐसा सिद्धान्त जो मनुष्य जाति की समानता की वकालत करता है।

54. अर्थवाद- एक ऐसा सिद्धान्त (जो एक तरह का रूढ़िवाद है) जो परिवर्तन और विकास को आर्थिकता के रूप में पेश करता है।

55. विकासवाद- पूर्ववर्ती प्रजातियों से विकास पाकर पेड़ और पौधों की प्रजातियों का उद्‌भव होने के सिद्धान्त को विकासवाद कहते है।

56. परम्परावाद- यह सिद्धान्त परम्पराओं पर निर्भर रहने को मान्यता देता है।

57. अनुभववाद या प्रयोगवाद- यह सिद्धान्त कहता है कि सारा ज्ञान ही अनुभव से ही प्राप्त होता है।

58. अतिवाद- यह सिद्धान्त चरमपंथी विचारों एवं तरीकों से अपना उद्देश्य हासिल करने की पैरवी करता है।

59. अस्तित्ववाद- यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि यथार्थ जो अस्तित्व में है वह केवल मनुष्य द्वारा स्वतंत्र और उत्तरदायी रूप से जीया जा सकता है,

Scanned with CamScanner

परन्तु वह सोच का कभी उद्देश्य नहीं बन सकता है। (यह बुद्धिवाद विरोधी सिद्धान्त है)।

60. प्रदर्शनवाद- यह सिद्धान्त दिखावटी व्यवहार पर खड़ा है।
61. हेतुवाद (उद्देश्यवाद)- यह अन्तिम कारणों का सिद्धान्त है जो यह विश्वास करता है कि विकास उद्देश्य के कारण होता है और यह उद्देश्य की सेवा करके प्राप्त किया जा सकता है।
62. व्यवस्थावाद- यह वनस्पति एवं पशु जगत का वर्गीकरण करके वैज्ञानिक अध्ययन करने का सिद्धान्त है।
63. फासीवाद- यह फासीस्टों के अधिनायकवादी और षड़यन्त्रकारी आचरण, तरीको और संगठन को मान्यता देने वाला सिद्धान्त है।
64. साम्राज्यवाद- यह सिद्धान्त उपनिवेशवाद या साम्राज्य निर्माण के फैलाव की वकालत करता है।
65. बुद्धिवाद- इस सिद्धान्त के अनुसार ज्ञान पूर्णतया या मुख्यतया शुद्ध तर्क से हासिल होता है।
66. वामवाद- मार्क्सवाद-लेनिनवाद के विचारों को स्थापित करने वाला सिद्धान्त वामवाद है।
67. सौन्दर्यवाद- यह सिद्धान्त कला के क्षेत्र में केवल अच्छी पसन्द या सौन्दर्य के नियमों की प्रशंसा करता है।
68. अतियथार्थवाद- यह कला और साहित्य में चल रहा आंदोलन है जो मस्तिष्क के अवचेतन (सुषुप्त) गतिविधियों को अभिव्यक्त करता है।
69. प्रतीकवाद-कला के क्षेत्र में प्रतीकों के उपयोग से भावनाएं उत्पन्न करने का सिद्धान्त प्रतीकवाद है।
70. औपचारिकतावाद- यह सिद्धान्त औपचारिकताओं की पालना पर जोर देता है।
71. परिकल्पनावाद- परिकल्पना को तर्क का आधार बताना या उसे किसी प्रक्रिया की वास्तविकता की खोज का प्रारम्भिक बिन्दु बनाना ही परिकल्पनावाद है।
72. परमशक्तिवाद (निरपेक्षवाद)- यह सिद्धान्त अनियंत्रित शक्ति को सम्पूर्ण नियंत्रण की मान्यता देता है।
73. अलगाववाद- ऐसा सिद्धान्त जो अलगाव का पक्ष लेता है।
74. स्थानीयवाद- यह विशिष्ट स्थान से चिपके रहने का सिद्धान्त है।
75. नारीवाद- यह सिद्धान्त महिला अधिकारों की पैरवी करता है।
76. शिशुवाद (बालरूपतावाद)- मानसिक तथा भौतिक तौर पर अविकसित स्थिति वाला सिद्धान्त बालरूपतावाद है।

Scanned with CamScanner

77. व्यक्तिवाद- स्वकेन्द्रित अनुभूति या आचरण को घोषित करने वाला सिद्धान्त व्यक्तिवाद है।

78. सामन्तवाद- एक भू-मालिक (यानि अधिनायकवादीसत्ता) की अधीनता (या भूदासता) के विश्वास या अचारण को प्रतिपादित करने वाला सिद्धान्त सामन्तवाद कहलाता है।

79. मूलनिवासवाद (सहजतावाद)- यह सिद्धान्त सहज विचारों का सिद्धान्त है।

80. घुमन्तुवाद- जगह-जगह घूमते रहने की व्यवस्था का सिद्धान्त घुमन्तुवाद कहलाता है।

81. भिन्न मतावलम्बितावद (गैर अनुरूपतावाद)- यह सिद्धान्त किसी भी विचार या कार्यशैली के अनुरूप नहीं होने का सिद्धान्त है।

82. अनीश्वरवाद- यह सिद्धान्त ब्रह्माण्ड में ईश्वरीय शक्ति के अस्तित्व को नकारने का सिद्धान्त है।

83. ज्ञान मिमांसा- ज्ञान का सिद्धान्त है।

84. व्युत्पत्ति विज्ञान- शब्दों की व्युपत्ति का सिद्धान्त।

85. अधिभौतिकवाद- यह निराकारी (अमूर्त) पद्धति से अस्तित्व की खोजबीन करने का सिद्धान्त है।

86. तटस्थतावाद- किसी प्रक्रिया के सही और गलत में कोई भेद नहीं करने का सिद्धान्त।

87. संकीर्णतावाद- वस्तुओं के अध्ययन में संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाने का सिद्धान्त है।

88. तर्कसंगत मानवतावाद- यह सिद्धान्त मौजूदा समय में उभर रही भूमण्डलीय मानव समाज का सिद्धान्त है जो वर्तमान से पहले के बंटे हुए असंगठित और बिखरे सामाजिक स्वरूपों में व्यवहारिक नहीं था।

89. यथार्थवाद- एक ऐसा सिद्धान्त जो चीजों को उसी रूप में स्वीकारता है जैसी वास्तव में है।

(ख) तकनीकी-केन्द्रित धारणाएँ

1. प्रौद्योगिकतंत्रवाद- इस नजरिए के मुताबिक सामाजिक बदलाव की ताकत केवल तकनीकी में है।

2. यांत्रिकवाद- यह समाज की कार्यप्रणाली को एक मशीन के कार्य उसके ढांचे और भागों के तरीके से देखता है।

3. स्वत: क्रियावाद- स्वत: क्रियावाद सजीव की गति और क्रियाओं को मशीनी गति के रूप में देखता है जिसमें इच्छा शक्ति की भूमिका को नकार दिया जाता है।

Scanned with CamScanner

(ग) पर्यावरण-केन्द्रित धारणाएँ

1. पर्यावरणवाद- पर्यावरणवाद सामाजिक विकास में पर्यावरण को फैसलाकुन पहलू समझता हैं।
2. भू-राजनीति- भू राजनीति किसी देश की राजनीतिक जांच का आधार उसकी भौगोलिक स्थिति को बनाती है।
3. जन्तुवाद-जन्तुवाद मनुष्य का अध्ययन मात्र पशु के तौर पर करता है।

(घ) प्रकृति-केन्द्रित धारणाएँ

1. प्रकृतिवाद- प्रकृतिवाद समझता है कि सामाजिक परिवर्तन प्राकृतिक नियमों से होते हैं।
2. पदार्थवाद या वस्तुवाद- इसकी मान्यता है कि गैर-अहम (यानि वस्तुगत) का ज्ञान अहम (यानि मनोगत अथवा स्वयं) की तुलना में प्राथमिक और महत्वपूर्ण है।
3. गतिवाद- गतिवाद के अनुसार ब्रह्माण्ड के घटनाक्रम को कुछ सर्वव्यापी (या अन्तर्निहित) शक्ति या ऊर्जा से गति मिलती है।
4. सार्वभौमिकतावाद (या ब्रह्माण्डवाद)- यह इस बात पर जोर देता है कि ब्रह्माण्ड का अस्तित्व स्वयं ब्रह्माण्ड से है और यह सम्पूर्णता में स्वत: क्रियाशील है।
5. प्रत्यक्षज्ञानवाद (घटनाक्रमवाद)- प्रत्यक्षज्ञानवाद घोषणा करता है कि केवल घटनाक्रम ही ज्ञान की विषय वस्तु है।
6. व्यापकतावाद (आमवाद) - व्यापकतावाद समझता है कि एक सार्वभौम नियम प्रत्येक घटनाक्रम में क्रियाशील है जिसका कोई विशिष्ट नियम नहीं है।
7. समरूपतावाद- समरूपतावाद उद्घोषणा करता है कि प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न स्थान एवं भिन्न-भिन्न समय में समान रहती है।

(ड़) ईश्वर-केन्द्रित धारणाएँ

1. अलौकिकतावाद- अलौकिकतावाद विश्वास करता है कि अलौकिक शक्ति ही घटनाओं का स्वरूप तय करती है।
2. भाग्यवाद- भाग्यवाद विश्वास करता है कि सभी घटनाएं पूर्व-निश्चित होती है और मनुष्य अपना भाग्य बदलने में असमर्थ होता है।
3. अनुभवातीतवाद- अनुभवातीतवाद विश्वास करता है कि ज्ञान सोच और व्यवहार की बजाए अन्तर्बोध पर आधारित होता है।
4. प्रेतात्मावाद- प्रेतात्मावाद विश्वास करता है कि मृत आत्माएं सजीवों से सम्पर्क रख सकती हैं।
5. जड़पूजावाद- जड़पूजावाद विश्वास करता है कि जड़ पदार्थ की पूजा में चमत्कारिक शक्ति होती है।

Scanned with CamScanner

6. रहस्यवाद- रहस्यवाद सच्चाई के आध्यात्मिक बोध में विश्वास करता है जो मानवीय समझ से परे है।
7. पौराणिक कथावर्णनवाद- पौराणिक कथावर्णनवाद घटनाक्रम की व्याख्या अलौकिक चरित्र पर आधारित कहानियों से करता है।
8. सर्वज्ञतावाद- सर्वज्ञतावाद विश्वास करता है कि इस संसार में सब कुछ जानने वाली शक्ति मौजूद है।
9. सर्वेश्वरवाद- सर्वेश्वरवाद विश्वास करता है कि प्रत्येक वस्तु में ईश्वर मौजूद है।
10. एकेश्वरवाद- एकेश्वरवाद विश्वास करता है कि त्रियेक परमेश्वर (तीन का समूह) की बजाय ईश्वर एक है।

***

Scanned with CamScanner